श्रमण

ŚRAMAṆA

अप्रैल-जून २००३

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

PĀRVŚANĀTHA VIDYĀPĪṬHA, VARANASI

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण

ŚRAMAṆA

अप्रैल-जून २००३

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

PĀRVŚANĀTHA VIDYĀPĪṬHA, VARANASI

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण

पार्श्वनाथ विद्यापीठ की त्रैमासिक शोध-पत्रिका

वर्ष ५४ अंक ४-६ अप्रैल-जून २००३

प्रधान सम्पादक
प्रोफेसर सागरमल जैन

सम्पादक
डॉ० शिवप्रसाद

प्रकाशक
पार्श्वनाथ विद्यापीठ,
आई०टी०आई० मार्ग, करौंदी
पो०ऑ० - बी०एच०यू०,
वाराणसी-२२१००५ (उ०प्र०)
e-mail : parshwanathvidyapeeth@rediffmail.com
दूरभाष : ०५४२-२५७५५२१

ISSN-0972-1002

वार्षिक सदस्यता शुल्क

संस्थाओं के लिए	:	रु० १५०.००
व्यक्तियों के लिए	:	रु० १००.००
इस अंक का मूल्य	:	रु० २५.००

आजीवन सदस्यता शुल्क

संस्थाओं के लिए	:	रु० १०००.००
व्यक्तियों के लिए	:	रु० ५००.००

नोट : सदस्यता शुल्क का चेक या ड्राफ्ट केवल **पार्श्वनाथ विद्यापीठ** के नाम से ही भेजें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

पार्श्वनाथ विद्यापीठ द्वारा अपने संस्थापक स्व० लाला हरजसराय जी की पुण्य स्मृति में वर्ष १९९९ ईस्वी से एक निबन्ध प्रतियोगिता प्रारम्भ की गयी। उक्त वर्ष निबन्ध का विषय था **२१वीं शताब्दी में जैन धर्म की प्रासंगिकता।** इसमें पुरस्कृत आलेख **श्रमण** जनवरी-जून २००० संयुक्तांक के क्रोडपत्र के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। वर्ष २००१ में **जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण** नामक विषय पर निबन्ध आमंत्रित किये गये। इसमें लगभग ५० प्रतिभागियों ने अपने-अपने आलेख भेजे। प्रतिभगियों को दो वर्गों में बांटा गया था। प्रथम वर्ग में १८ वर्ष से कम आयु के लोग थे और द्वितीय वर्ग में १८ वर्ष और उससे ऊपर की आयु वाले। दोनों ही वर्गों के तीन-तीन प्रतिभागियों को उनके द्वारा प्रेषित आलेखों की श्रेष्ठता के आधार पर क्रमश: प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुरस्कार प्रदान किये गये। उक्त पुरस्कृत आलेखों के अतिरिक्त ७ अन्य आलेख भी यहां हम प्रकाशित कर रहे हैं जो पुरस्कृत तो नहीं किये जा सके परन्तु श्रेष्ठता क्रम में पुरस्कृत आलेखों के पश्चात् इनका ही स्थान रहा है। **श्रमण** एक शोधपरक पत्रिका है और इसमें केवल जैन विद्याविषयक शोध आलेख ही प्रकाशित होते हैं किन्तु विषय की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए इस अंक में केवल पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी आलेखों को ही स्थान दिया गया है। इसके सम्पादन में यथेष्ट परिश्रम करना पड़ा और यह भी ध्यान में रखा गया कि लेखों की मौलिकता बनी रहे। **श्रमण** का यह अंक सभी पाठकों को रुचिकर लगेगा, ऐसी आशा है।

२७-६-२००३ **सम्पादक**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण

अप्रैल - जून २००३

सम्पादकीय

विषय : जैनधर्म और पर्यावरण संरक्षण

(पार्श्वनाथ विद्यापीठ द्वारा आयोजित निबन्ध प्रतियोगिता २००१ में पुरस्कृत आलेख)

लेखक/लेखिका

१. डॉ. अर्चना श्रीवास्तव १-१२

२. श्री छैल सिंह राठौर १३-२१

३. श्री अमित बहल २२-३०

४. कु० रेनू गांधी ३१-३५

५. श्री रोहित गांधी ३६-४१

६. कु० निधि जैन ४२-४६

निबन्ध प्रतियोगिता २००१ हेतु प्राप्त अन्य विशिष्ट आलेख

७. दीपिका गांधी ४७-५६

८. डॉ० श्यामसुन्दर शर्मा ५७-६१

९. कमलिनी बोकारिया ६२-७२

१०. मनोरमा जैन ७३-८१

११. श्री देवेन्द्र कुमार हिरण ८२-९०

१२. कु० अल्का सुराणा ९१-९३

१३. श्रीमती सुधा जैन ९४-१००

१४. विद्यापीठ के प्रांगण में १०१-११२

१५. समाचार विविधा ११३-११८

१६. साहित्य सत्कार ११९-१२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण

डॉ० अर्चना श्रीवास्तव*

"पर्यावरण" शब्द अंग्रेजी के Environment का रूपान्तरण है। Environment फ्रेन्च क्रिया Environer से बना है जिसका अर्थ है To surround आसपास होना। इसमें हमारे आसपास रहने वाली बाहरी स्थितियों परिस्थितियों का समावेश हो जाता है। इसके अन्तर्गत मानव के साथ ही इसके आसपास रहने वाले सजीव और निर्जीव सभी घटक आ जाते हैं। इसका समर्थन A.N. Straller, T.R. Detreyley, M.G. Maecus आदि विद्वानों ने किया है। मानवीय कल्याण व प्रगति की दृष्टि से प्रकृति का सदुपयोग बताने वाली प्रणाली का अध्ययन पर्यावरण विज्ञान कहा जाता है। इसके अन्तर्गत वातावरण, जलावरण, मृदावरण आदि सब कुछ समाहित हो जाता है। पारिस्थितिकी शास्त्र (Ecology) का तो इससे विशेष सम्बन्ध रहा ही है।

पारिस्थितिकी शास्त्र (Ecology) की परिभाषाएँ विद्वानों ने विविध प्रकार से दी हैं जिनका तात्पर्य है पशुओं और वनस्पतियों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा इनके पर्यावरण का अध्ययन- (A study of animals and plants in their relations to each other and to their environment.)। यह वस्तुत: प्रकृति का वैज्ञानिक अध्ययन है अथवा यों कह सकते हैं कि इसमें जैविक समुदायों का विशेष अध्ययन किया जाता है और मानव पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है इसे भी स्पष्ट किया जाता है। Biology, Morphology, Physiology आदि से इस विज्ञान का विशेष सम्बन्ध है। मानव समुदाय से इसका विशेष सम्बन्ध होने के कारण इसे Human Ecology भी कहा गया है।

पर्यावरण शब्द 'वातावरण' का पर्याय है। यह पर्यावरण अपने में अत्यन्त व्यापक अर्थ समाहित किए हुए है। इसे दो दृष्टियों से देखा जा सकता है- भौतिक पर्यावरण एवं आध्यात्मिक पर्यावरण जीव मात्र को दैहिक सन्तुष्टि प्रदान करने वाले भूमि, जल, वायु, वनस्पति आदि तत्व भौतिक पर्यावरण में समाविष्ट हैं और आत्मसंतुष्टि, आध्यात्मिक पर्यावरण की परिणति है। आत्मसंतुष्टि से न केवल आध्यात्मिक पर्यावरण अपितु भौतिक पर्यावरण भी शुद्ध होता है। वास्तव में जीव

---

*प्रथम पुरस्कार प्राप्त आलेख (ग्रुप- बी)

द्वारा- श्री मृत्युंजयलाल श्रीवास्तव, गुरुद्वारा गली, रामनगर, वाराणसी-२२१००८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सृष्टि एवं वातावरण का परस्पर सम्बन्ध ही पर्यावरण हैं, इनके सन्तुलन से ही पर्यावरण शुद्ध रहता है।

पर्यावरण के साथ धर्म को स्थापित करने के लिए धर्म के इस वास्तविक स्वरूप को जानना होगा जो प्राणी मात्र के लिए कल्याणकारी हो। वैदिक युग के साहित्य से ज्ञात होता है कि धर्म का जन्म प्रकृति से ही हुआ है। प्राकृतिक शक्तियों को अपने से श्रेष्ठ मानकर मानव ने उन्हें श्रद्धा, उपहार एवं पूजा देना प्रारम्भ किया। वहीं से वह आत्मशक्ति को पहचानने के प्रयत्न में लगा है। भारतीय परम्परा में धर्म जीवन-यापन की एक प्रणाली है, केवल बौद्धिक विलास नहीं अत: जीवन का धारक होना धर्म की पहली कसौटी है।

धर्म का अनुवाद अंग्रेजी में साधारणत: Religion शब्द से किया जाता है। यह शब्द लैटिन भाषा के शब्द Relgare से उद्भूत हुआ है, जिसका अर्थ होता है बांधना। धर्म एक ऐसा तत्व है जो आराध्य तथा आराधक, उपास्य तथा उपासक, व्यक्ति तथा समाज को बांधे रहता है।

धर्म के स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए जैन आगमों में एक महत्वपूर्ण गाथा कही गयी है-

धम्मो च वत्थुसहावो, खामादि भावो य दसविहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो, जीवाणं रक्खण धम्मो।।

अर्थात वस्तु का स्वभाव धर्म है, क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि दस आत्मा के भाव धर्म हैं, रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्चरित्र) धर्म है तथा जीवों का रक्षण करना धर्म है। धर्म की यह परिभाषा जीवन के विभिन्न पक्षों को समुन्नत करने वाली है। पर्यावरण की शुद्धता के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार के धर्म की बड़ी सार्थकता है।

धर्म 'धृ' धातु से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ होता है बनाये रखना, धारण करना (धारणात्, धर्ममित्याहु, धर्मे विघृता: प्रजा:)। जैनधर्म अर्हत्धर्म है जहाँ कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त करना मुख्य उद्देश्य रहता है।

जैनधर्म कदाचित् प्राचीनतम धर्म है जिसने पर्यावरण को इतनी गहराई से समझा और उसे धर्म और मानवता से जोड़ा। जैनाचार्य पर्यावरण की समस्या से भलीभाँति परिचित थे और प्रदूषण की सम्भावनाएँ उनके सामने थीं। इसलिए सबसे पहली व्यवस्था उन्होंने दी व्यक्ति यत्नपूर्वक चले, यत्नपूर्वक ठहरे, यत्नपूर्वक बैठे, यत्नपूर्वक सोये, यत्नपूर्वक भोजन करे और यत्नपूर्वक बोले तो इस प्रकार से संयत जीवन से वह पाप कर्मों में नहीं बंधता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"जयं चरे जयं चिट्ठे जयं मासे जयं सये।
जयं भूसेज्ज भासेज्ज एव पावं ण वज्झाई।"

जैनधर्म से दृष्टि की वस्तुत: जीवन-धर्म है वह जिन्दगी को सही ढंग से जीना सिखाता है, जात-पांत के भेद-भाव से ऊपर उठकर राष्ट्रीयता के परिवेश में आध्यात्म का अवलम्बन कर अपने सहज स्वभाव को पहचानने का मूल-मन्त्र देता है।

विश्व की जितनी वस्तुएँ हैं उनके मूल स्वभाव को जान लेना, उन्हें अपने-अपने स्वभाव में रहने देना सबसे बड़ा धर्म है। 'महाभारत' के 'कर्णपर्व' में कहा गया है कि समस्त प्रजा का जिससे संरक्षण हो, वह धर्म है। यह प्रजा पूरे विश्व में व्याप्त है अत: विश्व को जो धारण करता है, उसके अस्तित्व को सुरक्षित करने में सहायक है, वह धर्म है-'धरित विश्वं इति धर्मः। **महाभारत** की यह उक्ति बड़ी सार्थक है। महर्षि कणाद ने धर्म के विधायक स्वरूप को स्पष्ट करने हुए कहा है कि धर्म उन्नति और उत्कर्ष को प्रदान करने वाला है- यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। उन्नति और उत्कर्ष को मार्ग स्पष्ट करते हुए धर्म के अन्तर्गत श्रद्धा, मैत्री आदि सद्गुणों के विकास को भी सम्मिलित किया गया है।

धर्म के दो रूप होते हैं- एक तो वह व्यक्तिगत होता है जो परमात्मा की आराधना कर स्वयं तद्रूप बनाने में गतिशील रहता है और दूसरा सांस्थिक धर्म होता है जो धर्म की भूमिका पर खड़े होकर कर्मकाण्ड और सहकार पर बल देता है। एक आन्तरिक तत्व है और दूसरा बाह्य तत्व है। दोनों तत्व एक दूसरे के परिपूरक होते हैं, आन्तरिक अनुभूति को सबल बनाये रखते हैं, बुद्धि-भावना और क्रिया को पवित्रता की ओर ले जाते हैं और मानवोचित गुणों का विकास कर सामाजिकता को प्रस्थापित करते हैं। पर्यावरण धर्म की इन दोनों व्याख्याओं से सम्बद्ध है।

जैन धर्म अर्हत्धर्म है जहाँ कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त करना मुख्य उद्देश्य रहता है। इस दृष्टि से जैनाचार्यों ने धर्म को विविध रूपों से समझाने का प्रयत्न किया है। इसे हम निम्न रूप में विभाजित कर सकते हैं-

१. धर्म का सामान्य स्वरूप २. धर्म का स्वभावात्मक स्वरूप ३. धर्म का गुणात्मक स्वरूप ४. धर्म का मोक्षमार्गात्मक स्वरूप ५. धर्म का सामाजिक स्वरूप

यदि कहा जाय कि धर्म ही पर्यावरण का रक्षक है और नैतिकता उसका द्वारपाल, तो गलत नहीं होगा। तीव्रता से बढ़ती जनसंख्या और उपभोक्ता-वादी संस्कृति के कारण प्रदूषित होते पर्यावरण से न केवल मानव जाति अपितु पृथ्वी पर स्वयं जीवन के अस्तित्व को भी खतरा उत्पन्न हो गया है। उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण जीवन के लिए आवश्यक स्रोतों का इतनी तीव्रता से इतनी अधिक मात्रा में दोहन हो रहा है कि प्राकृतिक तेल एवं गैस की बात तो दूर रही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब पीने और सिंचाई हेतु पानी मिलना भी दुष्कर हो गया। यही नहीं अब बड़े शहरों में प्राणवायु के थैले लगाकर चलना होगा। अतः मानव जाति के भावी अस्तित्व के लिए यह आवश्यक हो गया है कि पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त करने का प्रयत्न अविलम्ब प्रारम्भ हो।

आज का मनुष्य वनस्पति-जगत् को नाना प्रकार के साधनों द्वारा नष्ट करने और हानि पहुँचाने पर तुला हुआ है। महावीर के अनुसार वनस्पति जगत् भी एक विकलांग व्यक्ति की तरह ही होता है। यह अंध, वधिर, मूक, पंगु और अवयवहीन है। वनस्पतियों को भी उसी तरह कष्टानुभूति होती है जिस प्रकार शस्त्रों से भेदन-छेदन करने में मनुष्यों को दुःख होता है। मनुष्य और प्रकृति के बीच शांतिपूर्ण सम्बन्धों के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रकृति नियमानुसार कार्य करती रहे। प्रकृति के क्रिया-कलापों में अनावश्यक हस्तक्षेप प्रकृति के सन्तुलन को बिगाड़ता है। वर्तमान समय में अपने स्वार्थ और अहम् तुष्टि के लिए मनुष्य जिस तरह प्रकृति का शोषण कर रहा है, उससे प्रकृति का 'समत्व' पूरी तरह असंतुलित हो गया है।

महावीर ने आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व यह उद्घोषणा की थी कि न केवल प्राणी जगत् एवं वनस्पति जगत् में जीवन की उपस्थिति है, अपितु उन्होंने यह भी कहा था कि पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि में भी जीवन है। वे यह मानते थे कि पृथ्वी, जल एवं वनस्पति के आश्रित होकर अनेकानेक प्राणी अपना जीवन जीते हैं, अतः इनके दुरुपयोग या विनाश स्वयं के जीवन का ही विनाश है। इसीलिए जैनधर्म में उसे हिंसा या पाप कहा गया है।

आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व आचार्य उमास्वाति ने एक सूत्र प्रस्तुत किया- **'परस्परोपग्रहो जीवानाम्,** अर्थात् जीवन एक दूसरे के सहयोग पर आधारित है। विकास का मार्ग हिंसा या विनाश नहीं अपितु परस्पर सहकार है। एक दूसरे के पारस्परिक सहकार पर जीवन-यात्रा चलती है।

आज जीवन जीने के लिए जीवन के दूसरे रूपों का सहयोग तो हम ले सकते हैं, किन्तु उनके विनाश में हमारा भी विनाश निहित है। दूसरे की हिंसा वस्तुतः अपनी ही हिंसा है, इसलिए **आचारांग** में कहा गया है- जिसे तू मारना चाहता है, वह तो तू ही है- क्योंकि यह तेरे अस्तित्व का आधार है। पर्यावरण इस तथ्य का द्योतक है कि कोई भी अकेला प्राणी जीवन-यापन नहीं कर सकता, उसे आस-पास के भौतिक तत्वों का तो सहारा लेना ही पड़ेगा। साथ ही जीव समुदायों से भी वह पृथक नहीं रह सकता। पर्यावरणसंतुलन बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि जीव-जन्तुओं और पशु-पक्षियों का संरक्षण किया जाये। जंगलों के कट जाने पर जो पक्षी घोंसला बनाया करते थे वे अन्यत्र चले गये और जो वहीं रह गये वे लुप्त हो गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन् १५९८ में जब डच मोरिसस पहुँचे तो उन्होंने कबूतर जाति के एक पक्षी "डोडो" का शिकार किया जो अन्तत: ५० साल के बीच पूरी तरह समाप्त हो गया। उसके समाप्त होने से एक विशेष वृक्ष जाति भी नष्ट हो गयी। तुलसी का पौधा वातावरण को शुद्ध रखने में एक अहम् भूमिका निभाता है। उसके गंध से कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। खांसी, जुकाम, मलेरिया, गले की बीमारियों आदि में वह बड़ा काम आता है। शायद इसीलिए उसकी पूजा की जाती है।

पर्यावरण की प्रदूषित स्थिति की गम्भीरता को देखकर यूनेस्को के तत्वावधान में वैश्विक स्तर पर कदम उठाये गये। भारत ने भी इसका पुरजोर समर्थन किया। यहाँ भी इण्डियन ड्राफिकल इकोलॉजी सोसाइटी, इण्डियन एनवायरमेन्ट सोसायटी, नेशनल एनवायरमेन्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट, नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ इकोलॉजी और सेंट्रल ऐरिड जोन रिसर्च इन्स्टीट्यूट की स्थापना की गई जिनके माध्यम से पर्यावरण सम्बन्धी अध्ययन और शोधकार्य किये जा रहे हैं।

प्रकृति से मानव और मानवेतर प्राणिसमुदाय अविछिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। अत: पर्यावरण का क्षेत्र अब बहुत विस्तृत हो गया है- १. जल प्रदूषण २. वायु प्रदूषण ३. भू-प्रदूषण ४. ध्वनि प्रदूषण ५. वन्य संरक्षण ६. जनसंख्या पर नियन्त्रण ७. सामाजिक भावनाओं का विकास ८. विश्वबन्धुत्व का विकास ९. शिक्षा और अनुशासन १०. श्रम शक्ति को जागृतकर भ्रष्टाचार से मुक्त करना ११. आध्यात्मिक चेतना को जागृत करना १२. व्यसन मुक्त समाज की स्थापना १३. अहिंसा का पाठ १४. लोकतान्त्रिकता की शिक्षा और १५. जीवन मूल्य।

मनुष्य और प्रकृति के बीच शान्ति बनाये रखने के लिए मात्र यही आवश्यक नहीं है कि मनुष्य प्रकृति को प्रत्यक्षत: कोई हानि न पहुँचाये बल्कि उसे उन सभी योजनाओं को भी समाप्त कर देना चाहिए जो प्रकृति के अहित में हैं।

जैन दर्शन प्रकृति को क्षति पहुँचाने वाले शस्त्रों के निर्माण की अनुमति नहीं देता। अहिंसा की दृष्टि से जिन व्यवसायों को जैन दर्शन में निषिद्ध माना गया है उनमें ऐसे शस्त्रों का उत्पादन भी सम्मिलित है जो कष्ट देने या हानि पहुँचाने के लिए बनाए जाते हैं। अंगार-कर्म यदि जंगलों में आग लगाकर उन्हें साफ करता है तो वन-कर्म जंगल कटवाने का व्यवसाय है। जैन चिन्तकों ने मानव परिवेश में वनों की महत्ता को बहुत पहले ही समझ लिया था। वनों की कमी अन्तत: मानवीय अस्तित्व के लिए खतरा बन सकती है। आज यह सुस्पष्ट है कि प्रकृति की सुरक्षा के लिए वनों का संरक्षण आवश्यक है और इसी में मानव का कल्याण है।

आज शिक्षा जगत् में पर्यावरण और प्रदूषण पर विशेष बल दिया जा रहा है। पर्यावरण सम्बन्धी शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्त हैं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की वृत्ति पर अंकुश २. प्रकृति को स्वयं का एक भाग समझना ३. प्रकृति के साथ समरसता से रहना।

जैन धर्म इन तीनों ही सिद्धान्तों को स्वीकार करता है। समरसता में रहना ही समत्व है। जैन धर्म की मूलभित्ति अहिंसा और जीवदया है तथा जीवदया पर्यावरण का विभिन्न अंग है। जैन धर्म ने २५०० वर्ष पूर्व ही वनस्पति जगत् में आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध कर दिया था, आज विज्ञान ने उसे पुष्ट कर दिया है। प्रकृति का उल्लंघन करने से हम नयी-नयी विपदाओं को आमंत्रित करते हैं। यह उल्लंघन प्राय: लोभ और स्वार्थ के कारण होता है। इण्डोनेशिया के जंगलों में लगी भयानक आग इसका नवीनतम उदाहरण है। जिस प्रकार एक अंधा, मूक, पंगु, वधिर व्यक्ति पीड़ा का अनुभव करते हुए भी उसे अभिव्यक्त नहीं कर पाता है, उसी प्रकार वनस्पति आदि अन्य जीव भी पीड़ा का अनुभव करते हैं किन्तु उसे व्यक्त करने में समर्थ नहीं होते। अत: व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य यही है कि उनकी हिंसा एवं उनके अनावश्यक दुरुपयोग से बचे। जिस प्रकार हमें अपना जीवन-जीने का अधिकार है उसी प्रकार उन्हें भी है।

अत: जीवन जहाँ कहीं भी जिस किसी भी रूप में हो उनका सम्मान करना हमारा कर्तव्य है। प्रकृति की दृष्टि से एक पौधे का जीवन भी उतना ही मूल्यवान है जितना एक मनुष्य का। पेड़-पौधे पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त करने में जितने सहायक हैं, उतना मनुष्य नहीं है, वह तो पर्यावरण को प्रदूषित ही करता है। वृक्षों एवं वनों के संरक्षण तथा वनस्पति के दुरुपयोग से बचने के सम्बन्ध में भी जैन साहित्य में अनेक निर्देश हैं। जैन परम्परा में मुनि के लिए तो हरित-वनस्पति को तोड़ने व काटने की बात तो दूर उसे स्पर्श करने का भी निषेध है। गृहस्थ उपासक के लिए भी हरित वनस्पति के उपयोग को यथाशक्ति सीमित करने का निर्देश है। इसके पीछे यह तथ्य रहा कि यदि मनुष्य जड़ों का ही भक्षण करेगा तो पौधों का जीवन ही समाप्त हो जायेगा। इसी प्रकार उस पेड़ को जिसका तना मनुष्य की बाहों में न आ सकता हो, उसे काटना मनुष्य की हत्या के समकक्ष माना गया है।

आचारांगसूत्र में वनस्पति के शरीर की मानव शरीर से तुलना करते हुए यही बतलाया गया है कि वनस्पति की हिंसा भी प्राणी की हिंसा के समान है। इसी प्रकार वनों में आग लगाना, वनों को काटना आदि गृहस्थ के लिए सबसे बड़ा पाप (महारम्भ) माना गया है क्योंकि उससे न केवल वनस्पति की हिंसा होती है, अपितु अन्य वन्य जीवों की भी हिंसा होती है और पर्यावरण प्रदूषित होता है, क्योंकि वन वर्षा और पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त रखने के अनुपम साधन हैं।

पर्यावरणविदों के अनुसार वनस्पति के बिना जैविक प्रक्रिया असम्भव है। जैविक संतुलन बनाने के लिए पौधों का संरक्षण बहुत आवश्यक है। मानव जीवन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसी पर आधारित है। प्राणवायु का स्रोत भी वही है। निःसंदेह वनों के काटने से हमारा प्राकृतिक संतुलन बिगड़ गया है वृक्षों के कम हो जाने से उपजाऊ मिट्टी बह जाती है, बाढ़ आदि का प्रकोप बढ़ जाता है। थोड़े से लोभ के कारण वनों की कटाई बढ़ती जा रही है। भारत में सन् १९४७ में वनों से होने वाली आय ८७ लाख थी जो अब बढ़कर ६० करोड़ हो गई है। पर्यावरणविदों के अनुसार एक वृक्ष अपनी पूरी उम्र में मनुष्य को लगभग १५ लाख रुपयों का लाभ देता है, जिसे हम कुछ हजार रुपयों के लोभ में कटवा देते हैं। वन, कृषि, मनुष्य और वन्य जीव एक दूसरे के पूरक हैं, पर आज यह सन्तुलन बिगड़ गया है।

वायुमण्डल हमारे पर्यावरण का अभिन्न अंग है। एक दिन में व्यक्ति लगभग २०,००० बार सांस लेता है और इस दौरान ३५ पौंड वायु का प्रयोग करता है। यदि वायु शुद्ध नहीं रही, तो वह निश्चित ही हमारे स्वास्थ्य के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकती है। वाहनों और उद्योगों से निकलने वाली विषैली गैसों ने इस वायु को अत्यन्त प्रदूषित कर दिया है। संसार में सर्वप्रथम वायु प्रदूषण से सम्बन्धित दुर्घटना सन् १९४८ में लास एंजेल्स में हुई और उसके बाद क्रमशः १९५२ ई० में लन्दन और १९८४ में भोपाल में। भोपाल में हुए गैस काण्ड के कुपरिणामों से हम परिचित हैं ही।

वायु प्रदूषण के प्रश्न पर भी जैन आचार्यों का दृष्टिकोण स्पष्ट था। यद्यपि प्राचीन काल में वे अनेक साधन जो आज वायुप्रदूषण के कारण बने हैं, नहीं थे। अधिक मात्रा में धूम्र उत्पन्न करने वाले व्यवसाय अल्प ही थे। धूम्र की अधिक मात्रा न केवल फलदार पेड़-पौधों अपितु अन्य प्राणियों और मनुष्यों के लिए किस प्रकार हानिकारक है, यह बात वैज्ञानिक गवेषणाओं और अनुभवों से सिद्ध हो चुकी है। **उपासकदशाङ्गसूत्र** में जैन गृहस्थों के लिए स्पष्टतः उन व्यवसायों का निषेध है जिनमें अधिक मात्रा में धूम्र उत्पन्न होकर वातावरण प्रदूषित होता हो। वायु प्रदूषण का एक कारण फलों आदि को सड़ाकर उनसे मादक पदार्थ बनाने का व्यवसाय भी है जो जैन गृहस्थों के लिए निषिद्ध है। वायु प्रदूषण को रोकने और प्रदूषित वायु, सूक्ष्म कीटाणुओं एवं रजकण के बचने के लिए जैनों में मुख वस्त्रिका बांधने या रखने की जो परम्परा है, वह इस तथ्य का प्रमाण है कि जैन आचार्य इस सम्बन्ध में कितने सजग थे कि प्रदूषित वायु और कीटाणु हमारे शरीर में मुख एवं नासिका के माध्यम से प्रवेश न करें और हमारा दूषित श्वांस वायु प्रदूषित न करे।

वायु मण्डल के प्रदूषण से ओजोन की परत पर आघात आने का खतरा बढ़ चुका है। उस पर विषैले गैसों से गम्भीर चोट पहुँच रही है। हम जानते हैं पृथ्वी पर आक्सीजन का स्रोत ओजोन ही है। पृथ्वी पर सूर्य के प्रकाश से पराबैगनी किरणों को रोकने का कार्य भी यह परत करती है। यदि ये किरणें पृथ्वी पर सीधे पहुँच जायें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो यहाँ कैंसर जैसे अनेक रोग पैदा हो जायेंगे। आज के दूषित वातावरण से वायुमण्डल में १६ प्रतिशत कार्बनडाईआक्साइड की मात्रा बढ़ गई है। यदि इसे रोका न गया तो भविष्य में इससे बहुत बड़ा खतरा पैदा हो सकता है।

पर्यावरण के प्रदूषण में आज धूम्र विसर्जित करने वाले वाहनों का प्रयोग भी एक प्रमुख कारण है। इसे दूर करने के लिए फ्लाई ओवर बने और आस-पास की व्यवस्था में परिवर्तन हो। यद्यपि वैज्ञानिक प्रगति के इस युग में यह बात हास्यापद लगेगी कि हम पुनः बैलगाड़ी की दशा में लौट जायें, किन्तु यदि वातावरण को प्रदूषण से मुक्त रखना है तो हमें अपने नगरों और सड़कों को इस प्रदूषण से मुक्त रखने का प्रयास करना होगा।

जैन मुनि के लिए आज भी पद यात्रा करने, कोई भी वाहन प्रयोग न करने का जो नियम है वह चाहे हास्यास्पद लगे, किन्तु यदि पर्यावरण को प्रदूषण से बचाना है तो मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से वह कितना उपयोगी है इसे झुठलाया नहीं जा सकता। आज की उपभोक्ता संस्कृति में हम एक ओर एक फर्लांग भी जाना हो तो वाहन की अपेक्षा रखते हैं तो दूसरी ओर डॉक्टरों के निर्देश पर प्रतिदिन पांच-सात कि०मी० टहलते हैं। यह कैसी आत्मा-प्रवंचना है, एक ओर समय की बचत के नाम पर वाहनों का प्रयोग करना तो दूसरी ओर प्रातःकालीन एवं सांयकालीन भ्रमणों में अपने समय का अपव्यय करना। यदि मनुष्य मध्यम आकार के शहरों तक अपने दैनिक कार्यों में यन्त्रचालित वाहनों का प्रयोग न करे तो उससे दोहरा लाभ हो। एक ओर ईंधन एवं तत्सम्बन्धी खर्च बचे तो दूसरी ओर पर्यावरण प्रदूषण से बचे, साथ ही उसका स्वास्थ्य भी अनुकूल रहेगा। प्रकृति की ओर लौटने की बात आज चाहे परम्परावादी लगती हो किन्तु एक दिन ऐसा आयेगा जब यह मानव अस्तित्व की एक अनिवार्यता होगी। आज विकसित देशों में यह प्रवृत्ति प्रारम्भ हो गई है।

वायुप्रदूषण की समस्या को अविलम्ब दूर किया जाना आवश्यक है। उसे उसके उद्गम स्थान पर ही नियन्त्रित कर देना चाहिए। गैस का बहाव प्रारम्भ में ही नियन्त्रित कर लिया जाये तो अधिक अच्छा होगा। निर्धूम ईंधन का उपयोग हो, वाहनों के धूएँ की संरचना बदली जाय, विद्युत इन्जनों का प्रयोग हो, चिमनियों की ऊँचाई अधिक हो, कारखाने शहरी क्षेत्रों से बाहर हों, कुटीर उद्योग गाँवों में भी लगायें जायें ताकि शहरों पर उनका दबाव कम हो, वनों की कटाई रोकी जाय और वनीकरण की प्रवृत्ति को विकसित किया जाये, अपशिष्ट पदार्थों के निकलने की सीवरेज व्यवस्था अच्छी हो, जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण हो और पर्यावरण चेतना को जागृत करने के लिए बच्चों के पाठ्यक्रम में इस प्रकार के पाठ सम्मिलित किये जायें कि वे उसका महत्व समझ सकें। साथ ही अग्निकायिक जीवों के घात से भी बचा जाये। उनके प्रति अहिंसा का व्यवहार हमारे वायुमण्डल के प्रदूषण को रोक सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्वनि प्रदूषण का सम्बन्ध भी वायुप्रदूषण और वायुमण्डल से है। ध्वनि स्वास्थ्य का जबर्दस्त शत्रु है। औद्योगिक यन्त्रों तथा वाहनों के कारण यह शत्रुता बढ़ती ही जा रही है। आवाज की तरंगों का संपीडन होता है, मन विचलित होता है। इस तीव्र ध्वनि से वार्तालाप में बाधा होती है, सामान्य आचरण प्रभावित होता है, कानों पर असर पड़ता है, श्रवणशक्ति कम हो जाती है। हृदय, तन्त्रिका-तन्त्र तथा पाचन-तन्त्र पर भी असर पड़ता है, मांसपेशियों में तनाव होता है। अत: ध्वनि को नियन्त्रित करना चाहिए। कुछ वृक्ष पंक्तियाँ रोपित करनी चाहिए जो ध्वनि को शोषित कर सकें।

जल एक प्राकृतिक स्रोत है। पृथ्वी का दो तिहाई भाग जल होते हुए भी मानव-उपभोग योग्य जल की मात्रा बहुत कम है। अधिकांश जल समुद्री है। उपभोग योग्य जल के मुख्य श्रोत हैं- धारायें, झीलें, नदियाँ, तालाब, जलाशय, संचित जल, झरने और कुएँ। स्वास्थ्यकारी जल बैक्टीरिया से मुक्त और गन्धहीन होता है। उसमें पर्याप्त मात्रा में घुलित आक्सीजन तथा कार्बोनिक अम्ल होते हैं और वह विशुद्ध होता है। जल वस्तुत: जीवन है। यह सर्वोपयोगी तत्व है, इसलिए संरक्षणीय है।

जल को प्रदूषण से मुक्त रखने एवं उसके सीमित उपयोग के लिए जैन-ग्रन्थों में अनेक निर्देश उपलब्ध हैं। यद्यपि प्राचीन काल में ऐसे बड़े उद्योग नहीं थे, जिनसे बड़ी मात्रा में जल प्रदूषण हो, फिर भी जल में अल्प मात्रा में भी प्रदूषण न हो इसका ध्यान जैन परम्परा में रखा गया है। जैन परम्परा में प्राचीन काल से यह अवधारणा रही है कि नदी, तालाब, कुएँ आदि में प्रवेश करके स्नान, दातौन तथा मल-मूत्र आदि का विसर्जन नहीं करना चाहिए, क्योंकि जल में शारीरिक-मलों के उत्सर्ग के परिणामस्वरूप जो विजातीय तत्व उसमें मिलते हैं, उनसे बहुतायात से जलीय जीवों की हिंसा होती हैं और जल प्रदूषित होता है। जैन परम्परा में आज भी यह लोकोक्ति है कि पानी का उपयोग घी से भी अधिक सावधानी से करना चाहिए। पूर्व में घी के गिरने पर उतनी प्रताड़ना नहीं मिलती थी, जितनी कि एक गिलास पानी के गिर जाने पर। आज से २०-२५ वर्ष पूर्व तक जैन मुनि यह नियम या प्रतिज्ञा दिलाते थे कि नदी, कुँए आदि में प्रवेश करके स्नान नहीं करना, स्नान में एक घड़े से अधिक पानी का व्यय नहीं करना आदि। उनके ये उपदेश हमारी आज की उपभोक्ता संस्कृति को हास्यापद लगते हों किन्तु आज जो पीने योग्य पानी का संकट है उसे देखते हुए, ये नियम कितने उपयोगी एवं महत्वपूर्ण हैं, इसे कोई भी व्यक्ति सरलता से समझ सकता है। जैन परम्परा में मुनियों के लिए तो सचित्त जल (जीवन युक्त जल) के प्रयोग का ही निषेध है। जैन मुनि केवल उबला हुआ पानी या अन्य किन्हीं साधनों से जीवाणुरहित किया हुआ जल ही ग्रहण कर सकता है। सामान्य उपयोग के लिए वह ऐसा जल भी ले सकता है जिसका उपयोग गृहस्थ कर चुका हो और उसे बेकार मानकर फेंक रहा हो। गृहस्थ उपासक के लिए भी जल के उपयोग से पूर्व उसका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छानना और सीमित मात्रा में ही उसका उपयोग करना आवश्यक माना गया है। बिना छाना पानी पीना जैनों के लिए पापाचरण माना गया है। जल को छानना अपने को प्रदूषित जल ग्रहण से बचाना है और इस प्रकार वह स्वास्थ्य के संरक्षण का भी अनुपम साधन है। जल के अपव्यय का मुख्य कारण आज हमारी उपभोक्ता संस्कृति है। जल का मूल्य हमें इसलिए पता नहीं लगता है कि प्रथम तो वह प्रकृति का नि:शुल्क उपहार है, दूसरे आज नल में टोटी खोलकर हम उसे बिना परिश्रम के पा लेते हैं। यदि कुओं से स्वयं जल निकाल कर और उसे दूर से घर पर लाकर इसका उपयोग करना हो तो जल का मूल्य क्या है, इसका हमें पता लगे। इस युग में जीवनोपयोगी सब वस्तुओं के मूल्य बढ़े किन्तु जल तो सस्ता ही है। जल का अपव्यय न हो इसलिए प्रथम आवश्यकता यह है कि हम उपभोक्ता संस्कृति से विमुख हों। वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति पहले से पचास गुना अधिक जल का उपयोग करता है। जो लोग जंगल में मल-मूत्र विसर्जन एवं नदी के किनारे स्नान करते थे उनके जल का वास्तविक व्यय दो लीटर से अधिक नहीं था और उपयोग किया गया जल भी या तो पौधों के उपयोग में आता था या फिर मिट्टी और रेत से छनकर नदी में मिलता था। किन्तु आज एक व्यक्ति कम से कम पांच सौ लीटर जल का अपव्यय कर देता है। यह अपव्यय हमें कहाँ ले जायेगा यह विचारणीय है।

वर्तमान समय में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशक दवाओं का उपयोग बढ़ता जा रहा है यह भी हमारे भोजन में होने वाले प्रदूषण का कारण है। जैन परम्परा में उपासक के लिए खेती की अनुमति तो है, किन्तु किसी भी स्थिति में कीटनाशक दवाओं के उपयोग की अनुमति नहीं है, क्योंकि उससे छोटे-छोटे जीवों की उद्देश्य पूर्ण हिंसा होती है जो उसके लिए निषिद्ध है। इसी प्रकार गृहस्थ के लिए निषिद्ध १५ व्यवसायों में विषैले पदार्थों का व्यवसाय भी वर्जित है। अत: वह न तो कीटनाशक दवाओं का प्रयोग कर सकता है और न ही उनका क्रय-विक्रय कर सकता है। महाराष्ट्र के एक जैन किसान ने प्राकृतिक पत्तों गोबर आदि की खाद से तथा कीटनाशकों के उपयोग के बिना ही अपने खेतों में रिकार्ड उत्पादन करके सिद्ध कर दिया है कि रासायनिक उर्वरकों का उपयोग न तो आवश्यक है और न ही वांछनीय, क्योंकि इससे न केवल पर्यावरण का संतुलन भंग होता है और वह प्रदूषित होता है, अपितु हमारे खाद्यान्न भी विषयुक्त बनते हैं जो हमारे लिए हानिकारक होते हैं।

इसी प्रकार जैन परम्परा में जो रात्रि भोजन निषेध की मान्यता है वह भी प्रदूषण मुक्तता की दृष्टि से एक वैज्ञानिक मान्यता है जिससे प्रदूषित आहार शरीर में नहं पहुँचता और स्वास्थ्य की रक्षा होती है। सूर्य के प्रकाश में जो भोजन पकाया और खाया जाता है वह जितना प्रदूषण मुक्त एवं स्वास्थ्यवर्द्धक होता है, उतना रात्रि के अन्धकार या कृत्रिम परकाश में पकाया गया भोजन नहीं होता है। यह मनोकल्पना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है, बलिक एक वैज्ञानिक सत्य है। जैनों ने रात्रि-भोजन निषेध के माध्यम से पयारवरण और मानवीय स्वास्थ्य दोनों के संरक्षण का प्रयास किया है। दिन में भोजन पकाना और खाना, प्रदूषण से मुक्त रखना है क्येंकि रात्रि एवं कृत्रिम प्रकाश में भोजन में विषाक्त सूक्ष्म प्राणियों के गिरने की सम्भावना प्रबल होती है, पुन: देर रात में किये गये भोजन का परिपाक भी सम्यक् रूपेण नहीं होता है।

आज जो पर्यावरण का संकट बढ़ता जा रहा है उसमें वन्य जीवों और जलीय जीवों का शिकार भी एक कारण है। आज जलीय जीवों की हिंसा के कारण जल में प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। यह तथ्य स्पष्ट है कि मछलियाँ आदि जलीय जीवों का शिकार जल-प्रदूषण का कारण बनता जा रहा है। इसी प्रकार कीट-पतंगे एवं वन्य जीव भी पर्यावरण संतुलन के बहुत बड़े आधार हैं। आज एक ओर वनों के कट जाने से उनके संरक्षण के क्षेत्र समाप्त होते जा रहे हैं, वहीं दूसरी ओर फर, चमड़े, मांस आदि के लिए वन्य जीवों का शिकार बढ़ता जा रहा है। जैन परम्परा में कोई व्यंक्ति तभी प्रवेश पा सकता है जबकि वह मांसाहार न करने का व्रत लेता है। शिकार व मांसाहार न करना जैन गृहस्थ की प्रथम शर्त है। मत्स्य, मांस, अण्डे एवं शहद का निषेध कर जैन आचार्यों ने जीवों के संरक्षण के लिए भी प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण प्रयत्न किये हैं।

आज विश्व में आणविक एवं रासायनिक शस्त्रों में वृद्धि हो रही है और उनके परीक्षणों तथा युद्ध में उनके प्रयोगों के माध्यम से भी पर्यावरण में असन्तुलन उत्पन्न होता है तथा वह प्रदूषित होता है। इनका प्रयोग न केवल मानव जाति के लिए अपितु समस्त प्राणि-जाति के अस्तित्व के लिए खतरा है। आज शस्त्रों की अंधी दौड़ में हम न केवल मानवता की अपितु इस पृथ्वी पर प्राणि-जगत् की अन्त्येष्टि हेतु चिता तैयार कर रहे हैं। भगवान् महावीर ने इस तथ्य को पहले ही समझ लिया था कि यह दौड़ मानवता की सर्व विनाशक होगी। **आचारांग** में उन्होंने कहा- अत्थि सत्थं परेणपरं-नत्थि असत्थं परेणपरं अर्थात् शस्त्रों में एक से बढ़कर एक हो सकते हैं, किन्तु अशस्त्र अहिंसा से बढ़कर कुछ नहीं है। यदि हमें मानवता के अस्तित्व की चिन्ता है तो पर्यावरण के सन्तुलन का ध्यान रखना होगा एवं आणविक तथा रासायनिक शास्त्रों के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाना होगा।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि जैन धर्म में पर्यावरण के संरक्षण के लिए पर्याप्त रूप से निर्देश उपलब्ध हैं। उसकी दृष्टि से प्राकृतिक साधनों का असीम दोहन जिनमें बड़ी मात्रा में भू-खनन, जल-अवशोषण, वायु प्रदूषण, वनों को काटने आदि के कार्य होते हैं, वे महारम्भ की कोटि में आते हैं जिसको जैनधर्म में नरक-गति का कारण बताया गया है। जैनधर्म का संदेश है प्रकृति एवं प्राणियों का विनाश करना नहीं, अपितु उनका सहयोगी बनकर जीवन-जीना ही मनुष्य का कर्तव्य है। प्रर्यावरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म की इन सभी परिभाषाओं से आबद्ध है। यह मानवता का पाठ पढ़ा कर समता मूलक अहिंसा की प्रतिष्ठा करता है और प्राणिमात्र को सुरक्षा प्रदान करने का दृढ़ संकल्प देता है। सामाजिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक प्रदूषण को दूर करने की दिशा में जैन धर्म ने जो महनीय योगदान दिया है वह अपने आप में अनूठा है। इस दृष्टि से धर्म की परिभाषा में और पर्यावरण की सुरक्षा में जैन धर्म जितना खरा उतरता है उतना अन्य कोई धर्म दिखाई नहीं देता। जैन धर्म वस्तुतः मानव धर्म है, मानवता की अधिकतम गहराई तक पहुँचकर दूसरे के कल्याण की बात सोचता है। यही उसकी अहिंसा है, यही उसका कारुणिक रूप है और यही पर्यावरण का आधार है। दानवता से प्रदूषण पलता है। अहिंसा संयम, समता और करुणा मानवता के अंग हैं, पर्यावरण के रक्षक हैं। जैनधर्म मानवतावादी धर्म है अहिंसा का प्रतिष्ठापक है। इसलिए पर्यावरण की समग्रता को समाहित किए हुए है। पर्यावरण की शुद्धता के प्रति एक बार लोकमत में जागृति आ जाये तो वह प्रदूषण एवं हिंसा के दानव का मुकाबला ही नहीं कर सकेगा, अपितु हमेशा के लिए उस पर विजय भी प्राप्त कर लेगा और यही धर्म की विजय होगी।

✸

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण

छैल सिंह राठौड़*

भारत भूमि में उद्भावित और सुविकसित धर्मों में जैन धर्म का प्रमुख स्थान है। धर्म शब्द अत्यन्त गम्भीर और गुरुतर अर्थ का बोधक है। भारतीय मनीषियों ने अनेक व्युत्पत्तियों से इसके निगूढार्थ का प्रतिपादन किया है। "येन ध्रियते स धर्मः, धारयत्ति इति धर्मः, धर्मो धारयते प्रजाः, धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा, धरति विश्वम् इति धर्मः" इत्यादि व्युत्पत्तियों तथा धर्ममहिमा-बोधक वाक्यों से यह ध्वनित होता है कि विश्व के धारक शाश्वत सिद्धान्तों की समष्टि ही धर्म शब्द से व्यवहृत हुई है। तत्वद्रष्टा महर्षि कणाद ने धर्म की जो "यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः सः धर्मः"[१] यह परिभाषा प्रस्तुत की है वह धर्म के व्यापक और गम्भीर स्वरूप की अवबोधिका है। धर्म वह तत्व है जो लौकिक समुन्नति और आत्मकल्याण अर्थात् मोक्ष दोनों का ही साधक होता है। जैन धर्म और दर्शन के मौलिक विचारक काका साहेब कालेलकर ने धर्म के स्वरूप पर विचार करते हुए कहा है-"धर्म की अनेक व्याख्याएँ की गयी हैं। मेरे विचार से धर्म की उत्तम व्याख्या यह है जीवनशुद्धि और समृद्धि की साधना जो दिखाये वह धर्म है।[२]" इस कथन पर विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य कालेलकर ने यह धर्मलक्षण महर्षि कणाद द्वारा प्रस्तुत धर्मलक्षण के अनुसार प्रस्तुत किया है। धर्म के इसी व्यापक मूल स्वरूप को विभिन्न तत्वद्रष्टा आचार्यों और महापुरुषों ने स्वीकार करते हुए अपने-अपने दृष्टिकोण से कुछ विशिष्ट सिद्धान्तों का समावेश कर उपदेश दिया है और वह उनके अनुयायी समाज के धर्म के नाम से व्यवहृत होता है। इस प्रकार मूलतः धर्म की एकस्वरूपता होने पर भी विभिन्न महापुरुषों तथा आचार्यों के अनुयायी समाजों के भेद से व्यवहार में अनेक धर्म प्रवृत्त हो जाते हैं।

प्रत्येक धर्म में व्यक्ति और समाज के अथवा यह कहना उचित होगा कि सम्पूर्ण विश्व के कल्याण की कामना की जाती है। सच्चा धर्म वही है जो पिण्ड और ब्रह्माण्ड में अथवा जीव और अजीव में अथवा प्रकृति अथवा प्राणि जगत् में समन्वय स्थापित कर सके। आधुनिक युग की भाषा में यह कह सकते हैं कि सच्चा धर्म वह

*द्वितीय पुरस्कार प्राप्त आलेख (ग्रुप- बी)।

द्वारा- श्री माधव सिंह राठौड़, ९४३, कागल हाउस, गाँधीपुरा, गली सं० ५, बी. जे. एस. कालोनी, जोधपुर (राज०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है जो प्राणिवर्ग और पर्यावरण को समन्वित स्वरूप प्रदान कर सके। धर्म के इसी प्राणि मात्र के लिए कल्याणकारी वास्तविक स्वरूप को जानने से पर्यावरण के साथ धर्म का नैसर्गिक सम्बन्ध स्वत: ज्ञात हो जाता है। पर्यावरण या समग्र प्रकृति एक दूसरे का पर्याय है। केवल नदी, जल, जंगल, पर्वत, पशु-पक्षी और वायु ही पर्यावरण नहीं हैं अपितु हमारी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आदि समस्त परिस्थितियाँ भी पर्यावरण की परिधि से परिवेष्ठित हैं।

परि तथा आ उपसर्ग सहित वृञ् धातु से करणार्थक ल्युट् प्रत्यय के संयोजन से बना हुआ पर्यावरण शब्द प्राचीन साहित्य में नहीं मिलता है। यह आधुनिक युग में प्रकल्पित एक नया शब्द है इसका शाब्दिक अर्थ है- हमारे चारों ओर का वातावरण जिससे हम ढके हुए हैं। पर्यावरण वह घेरा है जो मानव को चारों ओर से घेरे हुए है तथा उसके जीवन और क्रियाओं पर प्रभाव डालती है। इसमें मनुष्य के बाहर की समस्त घटक वस्तुएँ, स्थितियाँ तथा दशाएँ सम्मिलित हैं जो मानव के जीवन को प्रभावित करती हैं। पर्यावरण में वायुमण्डल, स्थलमण्डल और जलमण्डल के सभी भौतिक तथा रासायनिक तत्वों को समाविष्ट किया गया है। इस प्रकार पर्यावरण भौतिक तथा जैविक दोनों तत्वों से मिलकर बना है। जैविक पर्यावरण में समस्त जीव-जगत् और सभी प्रकार के पौधे सम्मिलित हैं। भौतिक पर्यावरण में मृदा, जल, वायु, प्रकाश और ताप हैं। इनसे स्थलमण्डल, जलमण्डल और वायुमण्डल निर्मित होता है।

वैदिक तथा परवर्ती प्राचीन वाड्मय में पर्यावरण-संरक्षण विषय पर पर्याप्त सामग्री मिलती है। अत: यह प्रश्न उठता है कि उस प्राचीन साहित्य में पर्यावरण शब्द के स्थान पर कौन से शब्द का प्रयोग हुआ है और किन तत्वों को पर्यावरण का संघटक माना गया है **अथर्ववेद** में प्राप्त वर्णन के अनुसार पर्यावरण के संघटक तत्व तीन हैं-[३] जल, वायु तथा औषधियाँ। ये भूमि को घेरे हुए हैं और मानव मात्र को प्रसन्नता प्रदान करते हैं, अत: इन्हें पुरुरूपंम् कहा गया है। प्रत्येक लोक को ये तत्व जीवनरक्षा के लिए दिये गये हैं। पर्यावरण शब्द व्यापक अर्थ की दृष्टि से भौतिक पर्यावरण और आध्यात्मिक पर्यावरण का बोधक है। पृथ्वी आदि तत्व भौतिक पर्यावरण के अन्तर्गत आते हैं और आध्यात्मिक पर्यावरण का पर्यवसान आत्मनि:श्रेयस में होता है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि जीवसृष्टि और प्रकृति का परस्पर समन्वित सम्बन्ध ही पर्यावरण है। पर्यावरण की परिशुद्धि से ही आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक -इन तीनों में समन्वय स्थापित रहता है। प्रस्तुत **विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि धर्म का पर्यावरण से घनिष्ठ सम्बन्ध है। पर्यावरण के संरक्षण के बिना धर्म अधर्म में परिणत हो जाता है।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधुनिक युग में आध्यात्मिकता से विमुख, भोगवादी तथा स्वार्थनिष्ठ मानवसमाज ने धर्म के वास्तविक स्वरूप के अनुसार आचरण न करते हुए विश्व में पर्यावरण-प्रदूषण की भयंकर समस्या उत्पन्न कर दी है। पर्यावरण प्रदूषण मुख्य रूप से ये हैं-: १. वायुप्रदूषण, २. जलप्रदूषण, ३. भूमिप्रदूषण, ४. ध्वनिप्रदूषण और ५. रेडियोधर्मीप्रदूषण। पर्यावरण के संरक्षक धर्मों में जैन धर्म का विशिष्ट स्थान है। जैन वाडङ्मय में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और वनस्पति आदि प्राकृतिक तत्वों में वैदिक वाड्मय के समान देवत्व की नहीं अपितु जीवत्व की अवधारणा है। आचार्य उमास्वाति ने संसारी जीवों को त्रस और स्थावर इन दो भेदों में विभक्त करते हुए कहा है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये पांच स्थावर जीव हैं।[४] इस प्रकार जैन धर्म में पृथ्वीकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय ये षट्कायिक जीव माने गये हैं। इस वर्गीकरण से जैन धर्म के अनुसार समस्त लोक जीवत्व से व्याप्त है और सम्पूर्ण पर्यावरण एक सजीव इकाई है। अत: विश्व के प्रत्येक पदार्थ के प्रति आत्मीयता और संरक्षण की भावना होनी चाहिए। **आचारांगसूत्र** में इसी भावना को अभिव्यक्ति देते हुए कहा गया है कि जिसे तू मारने, आज्ञा देने, परिताप देने, पकड़ने तथा प्राणहीन करने योग्य मानता है, वह वास्तव में तू ही है।[५] अन्य धर्मदर्शनों में जगत् का जड़ और चेतन भेद से विभाग किया गया है। देहधारी चेतन जीवों के अतिरिक्त पृथ्वी आदि तत्वों को जड़ अर्थात् अचेतन कोटि में मानने से उनके संरक्षण के प्रति वह आत्मीय भाव नहीं उत्पन्न होता जो उनको जैन धर्म में जीव कोटि में मानने से उत्पन्न होता है। जैनदर्शन में स्वीकृत अहिंसा, अपरिग्रह, समताव्यवहार, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और शाकाहार के नियमसिद्धान्त पर्यावरण के संरक्षण में अत्यधिक उपयोगी तथा समर्थ साधन हैं।

अहिंसा से पर्यावरणपरिशुद्धि- अहिंसा के उत्कृष्ट स्वरूप का जैसा सूक्ष्म विवेचन जैन धर्म-दर्शन में प्राप्त होता है वैसा अन्य किसी धर्म में नहीं प्राप्त होता। हां उपनिषदों में अहिंसा को अत्यधिक महत्व दिया गया है। जैन धर्म में पर्यावरण के समस्त घटकों को सजीव मानने के कारण अहिंसा का भाव ही उसके संरक्षण का सर्वोत्कृष्ट साधन हो सकता है और इसलिए जैन धर्म में स्वीकृत जीवनपद्धति के नियमों में अहिंसा को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। अत: सर्वप्रथम यही विचारणीय है कि जैन धर्म के अनुसार अहिंसा किस प्रकार पर्यावरण का संरक्षण और परिपोषण करती है। अहिंसात्मक आचरण षट्कायिक पर्यावरण की रक्षा के लिये जैन धर्म का मूलाधार है। आचार्य उमास्वाति का 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'[६] यह प्रसिद्ध सूत्र पर्यावरण के संरक्षण के लिए महामन्त्र है। जैनागमों में धर्म के व्यापक स्वरूप का विवेचन करते हुए जीवों के रक्षण को भी माना गया है, जैसा कि निम्नलिखित गाथा से ज्ञात होता है -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**"धम्मो वत्थुसहावो खमादिभावो य दसविहो धम्मो।
रयणत्तय च धम्मा, जीवाणंरक्खण धम्मो।।"**

यद्यपि जगत् में आत्यन्तिक अहिंसा की स्थिति नहीं प्राप्त की जा सकती तथापि जैन धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार अहिंसा की यथासम्भव चरम स्थिति तक पहुँचा जा सकता है। पर्यावरण के समस्त घटकों को जीव मानने तथा अहिंसा को अत्यधिक महत्व देने के कारण जैन धर्म विश्व में पर्यावरण के संरक्षण में अग्रणी हो सकता है, परन्तु इस भोगवादी युग में जैनधर्म की इस विचारधारा को स्वीकार करने वाले लोग अल्पसंख्यक ही हैं। जैन धर्म के अहिंसा के सिद्धान्त को अपनाने से मनुष्य की न तो त्रस जीवों की हिंसा में प्रवृत्ति होगी और न स्थावर जीवों की हिंसा में। इससे सम्पूर्ण वनस्पतिसम्पदा की सुरक्षा हो जायेगी। ऐसी स्थिति में अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि प्राकृतिक महाप्रकोपों से मानव का त्राण हो जायेगा।

हिंसक वृत्ति को अपनाने से मानव प्राकृतिक प्रकोपों की विभीषिका से सन्त्रस्त है। जैन धर्म-सम्मत अहिंसावृत्ति को न अपनाने से ही जलप्रदूषण पराकाष्ठा को प्राप्त हो गया है। भूगर्भीय तत्वों की प्राप्ति के लिए पृथ्वी के निरंतर दोहन से भूकम्पों की विभीषिका मानव को प्रकम्पित कर रही है। समस्त षट्कायिक जीव अपने अहिंसक स्वरूप से विश्व में सुख-समृद्धि का साम्राज्य स्थापित कर सकते हैं, परन्तु मानव की अमर्यादित तथा क्रूर हिंसा ने स्वर्ग को नरक में बदल दिया है। अहिंसकवृत्ति से ही पशु-पक्षियों की जाति-प्रजातियों की रक्षा हो सकती है। इसी से जल शोधक मछली आदि जलचर जीवों की रक्षा सम्भव है। अहिंसावृत्ति से ही अशुद्ध जल तथा अनावश्यक जलप्रवाह की समस्या से बचा जा सकता है। जैन धर्म में मानव की दिनचर्या के लिए किये जाने वाले प्रत्येक कार्य की अहिंसापरक विधि बतलायी गयी है। उन विधियों को अपनाने से ही भूमिप्रदूषण तथा अग्निप्रदूषण आदि का अधिकतम निवारण किया जा सकता है। जिस प्रकार हिंसा के व्यापक स्वरूप पर चिन्तन करने पर स्तेय, असत्य, अब्रह्मचर्य, परिग्रह तथा मांसभक्षण आदि हिंसा के ही रूप प्रतीत होते हैं उसी प्रकार सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह तथा निरामिष भोजन आदि पुण्य कर्म अहिंसा के व्यापक स्वरूप में समाहित हो जाते हैं। अहिंसकवृत्ति से ही सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और निरामिष आहार में प्रवृत्ति होती है, क्योंकि अहिंसा ही उनका मूलाधार अथवा जननी है।

जैन धर्म में द्रव्यहिंसा और भावहिंसा (सांकल्पिकी हिंसा) दोनों के परित्याग पर बल देने के कारण केवल बाह्य पर्यावरण की ही नहीं, आध्यात्मिक पर्यावरण की भी परिशुद्धि हो जाती है। समस्त पापों की मूल हिंसा की आत्यन्तिक निवृत्ति के लिए अहिंसा का विशेष उपदेश देने के कारण जैन धर्म में अहिंसा ही धर्म का लक्षण बन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गयी है और इसीलिए 'अहिंसा परमो धर्मः यह उक्ति प्रसिद्ध है। अहिंसा की महिमा का गान करते हुए कहा गया है-

"श्रूयते सर्वशास्त्रेषु सर्वेषु समयेषु च ।
अहिंसालक्षणो धर्मः अधर्मस्तद्विपर्ययः ।।१।।
अहिंसैव जगन्माताऽहिंसैवान्नदपद्धतिः ।
अहिंसेव गतिः साध्वी श्रीरहिंसैव शाश्वती ।।२।।
अहिंसैव शिवं सूते दत्ते च त्रिदिवश्रियम् ।
अहिंसैव हिंत कुर्याद् व्यसनानि निरस्यति ।।३।।
परमाणोः परं नाल्पं न मध्द् गगनात्परम् ।
यथाकिन्चित्तथा धर्मो नाहिंसालक्षणात् परम् ।।४।।"

काका साहेब कालेलकर ने जैन धर्म के अहिंसासिद्धान्त के बारे में अत्यन्त सूक्ष्म चिन्तन किया है। वे कहते हैं- 'जैनदृष्टि की जीवनसाधना में अहिंसा का विचार अत्यन्त सूक्ष्म तक पहुँचा है। उसमें अहिंसा का एक पहलू है जीवों के प्रति करुणा और दूसरा है स्वयं हिंसा के दोष से बचने की उत्कृष्ट कामना।[८]

जैन धर्म के अहिंसक-सिद्धान्तों ने यज्ञ में की जाने वाली पशुहिंसा को उन्मूलित करने में भी अत्यधिक योगदान किया है। यज्ञों में पशुहिंसा प्राचीनकाल में अत्यधिक प्रचलित थी उसका आधुनिक युग में जो सर्वथा अभाव पाया जाता है, वह जैन धर्म के अहिंसक-सिद्धान्त के प्रबल प्रचार से ही सम्भव हुआ है। इस प्रकार जैन धर्म ने समस्त प्रकार के पशु-पक्षियों को अभय प्रदान कर पर्यावरणपरिशुद्धि में अनुपम योगदान दिया है।

जैन धर्म का अहिंसक-सिद्धान्त तो पर्यावरणपरिशुद्धि के लिए सर्वोत्कृष्ट उपाय है ही, परन्तु अहिंसा पर आधारित सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और निरामिष आहारवृत्ति भी पर्यावरणपरिशुद्धि में सहायक है। सत्यवचन के प्रयोग से मानसिक अथवा आध्यात्मिक पर्यावरण की परिशुद्धि होती है। असत्य वचन से मानसिक हिंसा होती है। सत्य महाव्रत को जीवन में अपनाने से ही समाज छल, धोखा तथा अन्य मिथ्या आचरणों से मुक्त हो सकता है। सत्य पर बल देने के कारण जैन धर्म समाज में आध्यात्मिक पर्यावरण की परिशुद्धि के लिए अत्यन्त उपयोगी है। वस्तुस्थिति यह है कि सत्यव्यवहार को तिलाँजलि देकर असत्यव्यवहार के कारण ही हमारे देश में मिथ्या आचरणमूलक घटनाओं का बाहुल्य हो गया है।

अस्तेय से पर्यावरणपरिशुद्धि- सत्य की भाँति अस्तेयवृत्ति भी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक पर्यावरण की परिशुद्धि के लिए अत्यन्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपेक्षित है। लोभ और अकर्मण्यता के कारण मनुष्य चौर्य कर्म में प्रवृत्त होता है। लोभ ही परिग्रह का कारण है। मन, वचन और कर्म से किसी की सम्पत्ति को बिना आज्ञा के लेना या देना स्तेय है। अचौर्यवृत्ति को न अपनाने के कारण ही वर्तमान युग में पदार्थों में मिलावट करना, अनुचित रीति से धन ग्रहण करना, चोरी की वस्तु खरीदना, चोरी की प्रेरणा और उसका समर्थन करना, वनों का अवैध दोहन, अभ्यारण्यों में वन्य पशुओं की मृगया, रिश्वत लेना और देना आदि अतिचारों ने समाज को आक्रान्त कर दिया है। वर्तमान युग में वधुओं के दहेज निमित्तक दाह और हत्या जैसे क्रूरतम पाप कर्मों में प्रवृत्ति के लिए उत्प्रेरणा चौर्य और हिंसा की वृत्ति से ही मिलती है। जैन धर्म द्वारा विशेष रूप से उपदिष्ट अस्तेयवृत्ति को अपनाने से वर्तमान युग का समाज सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक प्रदूषण से मुक्त हो सकता है।

आत्मा के निज गुणों को छोड़कर क्रोध, लोभ आदि प्रभावों को ग्रहण करना अन्तरंग परिग्रह तथा ममत्व भाव से धन-धान्य आदि भौतिक वस्तुओं का संग्रह करना बाह्य परिग्रह है। जैन धर्म-दर्शन के प्रसिद्ध ग्रन्थ **तत्वार्थसूत्र** में परिग्रह की सूक्ष्म परिभाषा दी गयी है- **'मूर्छा परिग्रहः'**[१] अर्थात् भौतिक वस्तुओं के प्रति तृष्णा और ममत्व का भाव रखना मूर्च्छा है। वर्तमान भोगवादी धनलिप्साग्रस्त युग में मानव की परिग्रहवृत्ति चरम सीमा पर पहुँच गयी है। वह पूजा-पाठ और आध्यात्मिक ज्ञान का केवल आडम्बर करता है। वह बाहर तो स्वयं को ज्ञानी के रूप में प्रदर्शित करता है परन्तु उसका अन्तःकरण अज्ञान और मिथ्याज्ञान के अन्धकार से आवृत्त रहता है। आधुनिक युग का मानव जीवन की क्षणभंगुरता को भूल कर केवल अपने परिवार में भविष्य में आने वाली सात पीढ़ियों की सुख-समृद्धि के लिए धनसंग्रह करना चाहता है। इस अमर्यादित और असीमित धन संग्रह की प्रवृत्ति के कारण हमारे देश में गरीब अधिक गरीब और धनी अधिक धनी होते जा रहे हैं जिसके फलस्वरूप सामाजिक और आर्थिक पर्यावरण पूर्णतया प्रदूषित हो चुका है। ऐसी अति शोचनीय स्थिति में जैनधर्मसम्मत अपरिग्रहवृत्ति को धारण किये बिना मानव समाज का समभाव से अभ्युदय नहीं हो सकता। इस प्रकार अपरिग्रहवृत्ति पर्यावरणपरिशुद्धि के लिए परम उपयोगी होने के कारण सर्वथा स्वीकार्य है।

ब्रह्मचर्य से पर्यावरणशुद्धि-: वर्तमान युग में पर्यावरण-प्रदूषण में मानव समाज का अब्रह्मचर्य भी एक हेतु है। अब्रह्मचर्य की पराकाष्ठा के कारण हमारा देश विश्व में जनसंख्या वृद्धि में अग्रणी स्थान प्राप्त कर रहा है। अधिक जनसंख्या के कारण अधिक संसाधनों की आवश्यकता होने से हमारे देश में प्राकृतिक स्रोतों का अमर्यादित दोहन किया जा रहा है जिसके फलस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण की जटिल समस्या उत्पन्न हो गई है। **ब्रह्मचर्यवृत्ति को धारण करने से अतिजनसंख्या के कारण**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने वाले पर्यावरण-प्रदूषण से त्राण हो सकता है। आजीविका के पर्याप्त साधन के अभाव और अब्रह्मचर्य के कारण अधिक सन्तानोत्पत्ति हो जाती है और सन्तान के समुचित भरण-पोषण का अभाव होने से संतान के होने वाले शारीरिक तथा मानसिक कष्ट का निमित्त बनकर मानव एक तरह से हिंसा का ही आचरण करता है। उसकी कुपोषित अथवा अल्पपोषित और अशिक्षित संतान जीवननिर्वाह के योग्य नहीं बन पाती जिसके कारण सामाजिक और आर्थिक पर्यावरण की समस्या उत्पन्न हो जाती है। इन्द्रियों का असंयम पर्यावरणप्रदूषण की समस्या को उग्र बना देता है।

भोजन-संयम और शाकाहार से पर्यावरणशुद्धि- भोजन का असंयम और मांसाहार भी पर्यावरण प्रदूषण की समस्या का जनक है। सभी धर्मशास्त्रों में आहारशुद्धि और सात्विकता पर बल दिया गया है। इसलिए कहा गया है- **''आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः'' ''यादृशं भोजनं तादृशी मतिः''** । जैन धर्म में आहार विधि, आहारचर्या, आहारविवेक आदि पर विस्तृत चर्चा की गयी है। संसार में असंयत कामवासना तथा चल और अचल सम्पत्ति के प्रति अतिलोभ के कारण तो हिंसा होती ही है। यदि इन हिंसानिमित्तों के अतिरिक्त कोई प्रबल हिंसानिमित्त है तो वह है- मानव की निरंकुश मांसाहारवृत्ति। मनुष्य का प्रयास यह होना चाहिए कि वह शाकाहार ही ग्रहण करे और आहारनिमित्तक हिंसा के अधिकतम अल्पीकरण में प्रवृत्त हो। आहार-विषयक बद्धमूल अज्ञान और मिथ्याज्ञान के कारण ही मनुष्य मांसाहार में प्रवृत्त होता है। असंयत मांसाहारवृत्ति के कारण आज विश्व की दो-तिहाई जनसंख्या मांसाहारी है। मांसाहार की प्राप्ति के लिए असंख्य पशु-पक्षियों तथा मछली आदि जलचरों की हिंसा की जाती है। उन हिंसित प्राणियों के शरीर के अभोज्य अवयवों को सड़कों पर फेंकने तथा अभोज्य तरल पदार्थों को नालियों में बहाने से पर्यावरण-प्रदूषण की भयंकर समस्या उत्पन्न होती है। इतना ही नहीं, हिंसित प्राणियों के रोगज़नक कीटाणुओं का मांसाहार के कारण मनुष्य शरीर में संक्रमण होने से पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या और उग्र हो जाती है।

कृषिविशेषज्ञों के शोध का यह निष्कर्ष है कि शाकाहार द्वारा हमें निश्चित कैलोरी शक्ति प्राप्ति के लिए जितनी भूमि चाहिए उससे छः गुनी भूमि पशुओं का मांस प्राप्त करने के लिए चाहिए। जानवरों के चरने के लिए जो फसल लगाये जाते हैं उन्हें तुरन्त उखाड़ना पड़ता है या उन्हें मवेशी चर जाते हैं। जबकि यदि वहाँ वृक्षादि लगाये जायें तो जमीन बचेगी। इस प्रकार मांसाहार भी पर्यावरण का संकट पैदा करता है। जानवर के मांस के लोभ में हम जमीन का क्षरण करते हैं और वृक्षादि न लगाकर पृथ्वी को रेगिस्तान बनाकर दुष्चक्र में फंसते हैं। अपनी जिह्वा के स्वाद के लिए निर्दोष प्राणियों का वध सचमुच एक सांस्कृतिक अपराध है। शाकाहार के लाभ निःसन्दिग्ध रूप से प्रमाणित हैं। वस्तुतः जैन धर्म ने भोजनसंयम और शाकाहारवृत्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर बल देकर पर्यावरणशुद्धि में महान् योगदान दिया है। शाकाहार से मनुष्य में सात्त्विक बुद्धि उत्पन्न होती है, जबकि मांसाहार से तामसी और राजसी वृत्ति।

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित है कि जैन धर्म के अहिंसा आदि मौलिक सिद्धान्त पर्यावरण शुद्धि के परिपोषक हैं। इन सिद्धान्तों के आचरण से आन्तरिक और बाह्य दोनों दृष्टियों से पर्यावरण की शुद्धि होती है। जैन धर्म-दर्शन में इन सिद्धान्तों के प्राथमिक ज्ञान और सम्यक् ज्ञान के साथ चारित्र को भी समान रूप से महत्वपूर्ण माना गया है क्योंकि सिद्धान्तानुकूल आचरण के बिना सिद्धान्तों के ज्ञान मात्र से जीवन पूर्णतया सफल नहीं हो सकता। उचित ही कहा- "आचारहीनं न पुनन्ति वेदा:।" श्रेष्ठ आचरण के कारण ही गुरु आचार्य कहलाता है।

जैन धर्म-दर्शन में निरूपित षट् लेश्या का सिद्धान्त भी पर्यावरणशुद्धि की दृष्टि से उपयोगी हैं। मनुष्य का चिन्तन जैसा होता है वैसा ही वह कार्य करता है। एक ही प्रकार के कार्य को भिन्न-भिन्न वृत्ति वाले लोग भिन्न-भिन्न पद्धति से सम्पन्न करते हैं। जंगल में लकड़ी काटने के लिए गये छ: लकड़हारों द्वारा क्षुधाशमन के लिए अपनायी गयी छ: विभिन्न पद्धतियों के दृष्टान्त से यही शिक्षा मिलती है कि आज का मानव जीवनमूल्यों के माध्यम से पद्मलेश्या तक भी पहुँच जाये तो भी विश्व की प्राकृतिक सम्पदा सुरक्षित हो जायेगी और लोगों की मौलिक आवश्यकताएँ पूरी हो जायेंगी। जैन धर्म की यही शिक्षा है कि मानव को अपनी दैनिक जीवनचर्या में हिंसा, परिग्रह, असत्य-भाषण, अब्रह्मचर्य, मांसाहार आदि से बचने का यथा-सम्भव अधिकतम प्रयास करना चाहिए।

मानवकृत पर्यावरण प्रदूषण के कारण मानवजाति ही नहीं अपितु समस्त प्राणी वर्ग पीड़ित होते हैं। प्रासंगिक रूप से यह भी विचारणीय है कि पर्यावरणपरिशुद्धि के परिपोषक इन सिद्धान्तों के उपदेशक जैन धर्मानुयायी स्वयं इनका सम्यक् परिपालन करते हैं या नहीं? जहाँ तक पशु हिंसा और निरामिष भोजन का प्रश्न है जैन समाज आज भी उससे विरत है। यदि जैन धर्म के उक्त सिद्धान्तों का सम्यक् रूप से पालन किया जाय तो सम्पूर्ण विश्व पर्यावरण-प्रदूषण से पूर्णतया मुक्त हो सकता है। पर्यावरणशुद्धि के लिए इनको अपनाना अपरिहार्य है। जैन साधनापद्धति नि:संदिग्ध रूप से एक ऐसी पद्धति है जो जीव और अजीव तत्वों में परस्पर पूर्ण समन्वय, सामन्जस्य और सन्तुलन को स्थापित करती है।

सन्दर्भ

१. **वैशेषिकसूत्र,** प्रथमाध्याय, प्रथमाह्निक सूत्र- २

२. काका साहेब कालेलकर, **महावीर का जीवन संदेश: युग के संदर्भ में,** राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर १९८२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं द्रर्शतं विश्वचक्षणम्।
आपो वाता ओषधय: तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि।।
अथर्ववेद, १८.१.१७

४. संसारिणस्त्रसस्थावरा।।
पृथिव्यम्बुवनस्पतय:स्थावरा:।। **तत्त्वार्थसूत्र**, २/१२-१३

५. **आचाराङ्गसूत्र**, पञ्चम अध्याम, लोकसार, पञ्चम उद्देशक
'अहिंसापद' सूत्र १०१, १०२, १०३

६. **तत्त्वार्थसूत्र,** ५/२१

७. **जैनदर्शनसार,** १३५-३६

८. काका कालेलकर, पूर्वोक्त, पृष्ठ-१४९

९. **तत्त्वार्थसूत्र**-७/१२

✹

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण

अमित बहल*

आज संसार के समक्ष उत्पन्न समस्याओं में पर्यावरण की समस्या सर्वाधिक विकट है। यूरोप से आरम्भ होकर शनैः-शनैः समस्त विश्व में फैली औद्योगिक क्रान्ति ने जहाँ एक ओर भौतिक संसाधनों का प्रकृति से अनवरत दोहन आरम्भ किया तो दूसरी ओर नग्न साम्राज्यवाद के शोषण तंत्र को गति दी। आणविक अस्त्रों के भूमि व वायु में लगभग अठारह सौ से भी अधिक परीक्षणों के दुष्परिणाम से संपूर्ण विश्व चौकन्ना हो गया। आज पर्यावरण को लेकर सभी देशों में एक चेतना पैदा हो चुकी है। यह चेतना है जल, वायु, ध्वनि और पृथ्वी के शुद्धि की। पर्यावरण शुद्धि प्राणिमात्र के लिए अति आवश्यक है। औद्योगीकरण के गतिशील चरणों ने जल, वायु एवं ध्वनि को प्रदूषित कर रखा है। कल-कारखानों के बढ़ने के साथ मानवजनित कचरा-मल-मूत्र भी नदियों में गिराया जाने लगा। भारत सहित दुनिया भर में पिछले १५-२० वर्षों से ऐसी ही दुविधापूर्ण स्थितियों ने पानी को नदियों-तालाबों से उठाकर बोतलों में बंद कर दिया। पानी पिलाकर पुण्य कमाने की अवधारणा इसे खरीदने-बेचने की सभ्यता की चौखट पर दम तोड़ चुकी है।

विज्ञान में पर्यावरण हेतु 'इकोलॉजी' शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अभिप्राय है कि प्रकृति के सभी पदार्थ एक-दूसरे पर निर्भर हैं, एक-दूसरे के पूरक हैं। यदि एक पदार्थ भी प्रकृति अथवा अपने स्वभाव के विपरीत जाता है तो प्रकृति में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है, जो अतिवृष्टि, भूचाल, बाढ़, प्रचण्ड गर्मी, अल्प वर्षा आदि के रूप में भयावह हानि पहुँचाता है। पृथ्वी एवं सूर्य के मध्य ओजोन की छतरी है। यह पृथ्वी की सतह से ऊपर दस से पन्द्रह किलोमीटर के बीच समताप मण्डल में स्थित एक विरल परत है। यह अंतरिक्ष से आने वाली पराबैगनी किरणों को पृथ्वी तक पहुँचने से रोकती है। प्राकृतिक असंतुलन और प्रदूषण के कारण उसमें छिद्र हो गए हैं जिससे जीवन के लिए खतरा बढ़ रहा है। स्थान-स्थान पर भूकंप, बाढ़, तूफान आदि प्राकृतिक प्रकोप जनजीवन को अस्त-व्यस्त कर रहे हैं। ज्वालामुखी फटने की संभावनाएं प्रबल हो रहीं हैं। ऐसी स्थिति में प्रकृति के असीम दोहन से

*तृतीय पुरस्कार प्राप्त आलेख (ग्रुप- बी)

द्वारा- श्री बी. एन. बहल, सोमबाजार, चन्द्रनगर, दिल्ली-११००५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्पन्न संपन्नता का भोग कौन और कैसे करेगा? आज विश्व के तथाकथित कर्णधारों को यह चिंता सता रही है कि पृथ्वी का क्या होगा? यदि पृथ्वी न बची तो मनुष्य नहीं बचेगा और मनुष्य नहीं होगा तो संपन्नता अर्थहीन हो जाएगी।

मनुष्य ने अपने विकास को लक्ष्य बनाकर प्रकृति का असीम दोहन किया। इसने प्रकृति असंतुलन की स्थिति को जन्म दिया। विकास के विषय में कोई दो मत नहीं है। मतभेद का विषय है सीमा। आदिमकाल से लेकर अब तक विकास का चक्र चलता रहा। उसकी गति बहुत धीमी थी। २०वीं सदी में विकास की रफ्तार तेज हुई। उसका श्रेय विज्ञान को है। सृष्टि संतुलन-इकोलॉजी- की समस्या का श्रेय भी विकास की आँधी को ही है। असंतुलित विकास को एक नदी का प्रवाह मानें तो बाढ़ का खतरा है। मानवीय मूल्य और पर्यावरण-ये दोनों तटबन्ध टूट चुके हैं। अब जलप्रवाह की रोकथाम करना संभव नहीं है। मानवीय मूल्यों और पर्यावरण की सुरक्षा के साथ-साथ जो विकास होता है, वह संतुलित होता है। उससे मानवीय अस्तित्व को कोई खतरा पैदा नहीं होता। आर्थिक महात्वाकांक्षा अथवा आर्थिक स्पर्धा ने मानवीय मूल्यों और पर्यावरण दोनों की उपेक्षा की है। फलतः पर्यावरण असंतुलन की समस्या उत्पन्न हुई है। विकास के प्रति वर्तमान दृष्टिकोण सम्यक् नहीं है। वह संवेग के अतिरेक से प्रभावित है। अप्रभावित चिन्तन और अप्रभावित बुद्धि का निर्णय सही होता है। संवेग के अतिरेक की दशा में चिंतन और बुद्धि दोनों निष्क्रिय हो जाते हैं। इस निष्क्रियता की भूमिका पर होने वाला विकास मानवीय सभ्यता और संस्कृति के लिए वरदान नहीं अभिशाप होता है।

व्यापक दृष्टि से पर्यावरण को भौतिक एवं आध्यात्मिक पर्यावरण के रूप में देखा जा सकता है। जीव को दैहिक संतुष्टि देने वाले तत्व-पृथ्वी, पानी, पवन आदि भौतिक पर्यावरण में समाविष्ट हैं और आत्मिक संतुष्टि आध्यात्मिक पर्यावरण का सुफल है। भारतीय ऋषि अति प्राचीनकाल से ही भौतिक एवं आध्यात्मिक पर्यावरण के प्रति सजग थे। प्राचीन भारतीय साहित्य में पर्यावरण के प्रति उनकी चेतना प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से परिलक्षित होती है। प्राचीन भारतीय संस्कृति दो समानान्तर धाराओं-वैदिक और श्रमण संस्कृति में प्रवाहित हुई। वैदिक संस्कृति का निदर्शन वैदिक वाङ्मय में पंचमहाभूतों की पर्यावरण उपयोगिता से होता है। पौराणिक साहित्य, आयुर्वेद, चरक संहिता, अर्थशास्त्र, वास्तुशास्त्र तथा स्मृति ग्रंथों में भी पर्यावरण चेतना दृष्टिगत होती है। द्वितीय धारा श्रमण संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण का सूक्ष्म चिंतन है।

अहिंसा का विज्ञान यही है कि संसार में सभी प्राणी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता, सब सुख चाहते हैं, कोई दुःख नहीं चाहता। सभी को इस संसार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में जीने का हक है। हमें क्या अधिकार है अपने सुखार्थ दूसरे प्राणी की जान लेने की? हम यह क्यों भूल जाते हैं कि हमारे कारखानों, मिलों से जो गंदा, प्रदूषित जल या जहरीली गैस निकली है वह सभी प्राणियों के लिए हानिकारक है। नदियों में इतना विषैला रसायन बहाया जाता है कि मछलियाँ मरी हुई ऊपर तैरती दिखाई देती हैं। १९८२ में भोपाल में जहरीली गैस के रिसने से २०,००० से अधिक लोग मारे गये, अनेक जीवन भर के लिए अपंग हो गये, नेत्रों की ज्योति खो बैठे, विकृत मस्तिष्क हो गए। प्रकृति में संतुलन बना रहे, यही पर्यावरण है, फिर आपदा नहीं आयेगी।

जैन धर्म का पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक वैज्ञानिक युग से दो हजार वर्ष पूर्व उमास्वाति ने **परस्परोपग्रहो जीवनाम्,** सूत्र द्वारा लोगों में पर्यावरण की चेतना प्रदान की थी और उसे व्यापक आयामों में प्रस्तुत किया था। इस सहअस्तित्व के सिद्धान्त को आज वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं। वृक्ष प्रणियों द्वारा विसर्जित कार्बनडाईआक्साइड ग्रहण कर प्राणवायु आक्सीजन छोड़ते हैं। हमें फल, औषधि आदि प्रदान करते हैं तथा वायु, भूमि व जल प्रदूषण से हमारी रक्षा करते हैं। स्कॉटलैण्ड के वनस्पति वैज्ञानिक राबर्ट चेम्बर्स के अनुसार वनों का विनाश करने वाले अतिवृष्टि, अनावृष्टि,गर्मी, अकाल और बीमारी को आमंत्रित कर रहे हैं। **आचारांगसूत्र** के प्रथम पांच अध्यायों में षट्कायिक जीवों का वर्णन है। जैन वाङ्मय में जीवतत्त्व का सूक्ष्म वैज्ञानिक वर्णन और वर्गीकरण है। जीवों की जातियों के अन्वेषण की चौदह मार्गणायें, उनके विकास के चौदह गुणस्थान और आध्यात्मिक दृष्टि से गुणदोषों के आधार तथा जीवन के भेदोपभेद का भी वर्णन समाविष्ट है। **पद्मपुराण** में वृक्षारोपण को प्रतिष्ठा का विषय बताया गया है। **वरांगचरित एवं धर्मशर्माभ्युदय** में वनों, उद्यानों, वाटिकाओं तथा नदी के तटों पर वृक्षारोपण का वर्णन है।

तीर्थंकरों की प्रतिमाओं पर अंकित चिन्ह पशु-पक्षी से जुड़े हुए हैं। आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का चिन्ह वृषभ है। यह भारतीय कृषि संस्कृति का आधार स्तम्भ है। यहाँ बैल से जुड़े घास के मैदान, साफ-स्वच्छ जल से भरे नदी, तालाब, हरी-भरी खेती सभी साकार हो उठते हैं। गज (अजितनाथ), अश्व (संभवनाथ), वानर (अभिनंदननाथ), चकवा (सुमितनाथ), मकर (पुष्पनाथ), गैंड़ा (श्रेयांसप्रभु), महिष (वासुपूज्य), शूकर (विमलनाथ), सही (अनन्तनाथ), हिरण (शांतिनाथ), छाग (कुंथुनाथ), कच्छप (मुनिसुव्रत), सर्प (पार्श्वनाथ), सिंह (महावीर) ये भी पशु-पक्षी मानव के लिए सहयोगी एवं उपयोगी हैं। इनके अतिरिक्त लालकमल (पद्मनाथ), तगर कुसुम (अरनाथ), नीलोत्पल (नमिनाथ), शंख (नेमिनाथ) प्रकृति विषयक हैं, जहाँ सौन्दर्य, शुद्ध वायु और सुगन्ध है। शंख, कच्छप और मकर जल की शुद्धता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की ओर संकेत करते हैं। चंद्रमा भी शीतलता, प्रकाश एवं स्वच्छता का प्रतीक है। ये सभी चिन्ह प्रतीकात्मक हैं और पर्यावरण की शुद्धता का भान कराते हैं। पर्यावरण की अनुभूति जैन विचारकों को हजारों वर्षों पूर्व थी, इसमें संदेह नहीं। यह पर्यावरण की अनुभूति ही थी, जिससे वन्य पशु, वन और वृक्ष, सभी की सुरक्षा का ध्यान जैन धर्म में रखा गया है।

पर्यावरण की चर्चा के साथ अहिंसा और दया की भावना भी सामने आती है। महावीर आत्मतुलवाद के प्रवर्तक थे। उन्होंने संयम, आचरण, करुणा और दया पर विशेष बल दिया। आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने अपनी पुस्तक **जैनधर्म : अर्हत् और अर्हताएं** में एक स्थान पर लिखा है कि सृष्टि संतुलन शास्त्र आधुनिक विज्ञान की एक नई शाखा हो सकती है लेकिन एक जैन के लिए यह सिद्धान्त ढाई हजार वर्ष पुराना है। सृष्टि- संतुलन का जो सूत्र महावीर ने दिया, वह आज भी उतना ही महत्वपूर्ण है। उन्होंने कहा- 'जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व वनस्पति के अस्तित्व को स्वीकार करता है, वह अपने अस्तित्व को स्वीकार करता है। अपने अस्तित्व के समान उनका अस्तित्व मानता है। हम इस तुला से तोलें तो न केवल अहिंसा का सिद्धान्त ही फलित होता है अपितु पर्यावरण विज्ञान की समस्या का भी महत्वपूर्ण समाधान प्राप्त होता है। यह आवश्यक है- हम अहिंसा को केवल धार्मिक रूप में प्रस्तुत न करें। यदि उसे वर्तमान समस्याओं के संदर्भ में प्रस्तुत किया जाए तो मानव जाति को एक नया आलोक उपलब्ध हो सकता है।'

भला अपना जीवन किसे प्रिय नहीं, सुख कौन नहीं चाहता? हमें फिर क्या अधिकार है, दूसरों के प्राण लेने का? अब तो अनेक देश फांसी की सजा को अमानवीय कहकर उसका निषेध कर रहे हैं। दया, ममता, सहानुभूति मानवीय गुण हैं, इनमें हमारे जीवन मूल्यों की सुगन्ध भरी पड़ी है। एक विचारक ने कहा है कि दयाभाव सर्वोत्तम गुण है, मानव-जीवन का एकमात्र सिद्धान्त, नियम है। हम इस एक नियम को भी अपने जीवन में नहीं उतार सके! आज संसार के सभी देश आतंकवाद और हिंसावाद से पीड़ित हैं। हाल ही में अमेरिका में आतंकवाद का जो भीषण ताण्डव हुआ, वह इस सदी की महान् त्रासदी के रूप में देखा जा रहा है। संसार विनाश की ओर उन्मुख है, आंखों पर पट्टी बांधे वह सरपट दौड़ रहा है। मालूम नहीं उसका क्या परिणाम होगा? हम विश्व-शांति की चाह करते हैं, लेकिन चाह करने से कुछ नहीं होगा, अपने आपको पहचानना होगा। महावीर ने इसी का उपदेश दिया। **'महामानव महावीर'** नामक अपनी पुस्तक में गुणवंत शाह ने ठीक ही लिखा है कि 'अहिंसा परम धर्म बन जाए, ऐसी अनुकूलता बढ़ते हुए औद्योगीकरण, प्रदूषण की समस्याओं, संतुलन की जरूरतों, ऊर्जा के संकट,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बढ़ते हुए तनाव और सर्वनाश की आशंका के कारण बन रही है। महावीर की अहिंसा का ऐसा संदर्भ स्वीकार न करें तो दोष हमारा है।'

शाकाहार के पीछे पर्यावरण की चेतना छिपी है। मांसाहार हेतु हमें वातावरण को शुद्ध एवं पवित्र रखने वाले पशु-पक्षियों का हनन करना पड़ता है। कुछ जल को शुद्ध रखते हैं। कुछ वृक्षों की रक्षा का ज्ञान हमें देते हैं। वन्य पक्षी हरे-भरे मैदानों एवं जंगलों में निवास करते हैं और वे वहाँ तभी रहेंगे जब वन होंगे। वनों से वर्षा एवं शुद्ध वायु मिलती है। भू-स्खलन नहीं होता। भू-उर्वरकता बनी रहती है। दया-भावना हमें हिंसा से रोकती है और हमारे अन्दर आत्मीयता का भाव पैदा करती है। शाकाहारी भोजन पौष्टिक, सात्विक, सुपाच्य और स्वाथ्यवर्धक होता है। जब शाकाहार का प्रचार किया जाता है तो उसके पीछे प्रकृति की सुरक्षा-भावना रहती है। पर्यावरण में संयम-संतुलन रहना आवश्यक है। असंयम के बढ़ने से संतुलन बिगड़ जाता है और सर्वत्र वायु, जल और ध्वनि प्रदूषण बढ़ने लगता है। महावीर ने इसलिए संयम को धर्म, जीवन कहा है-संयमः खलु जीवनम्। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वास्थ्य की परिभाषा में कहा है कि शरीर के संपूर्ण भौतिक, मानसिक तथा सामाजिक क्षेम-कुशल को स्वास्थ्य कहते हैं; यह निरोग या बलवान होने का नाम नहीं है। सर्वविदित है कि इस आरोग्यता के पीछे संयम की भावना है- संयम खाने-पीने में, सोच-विचार में, सामाजिक व्यवहार में रहेगा तो कोई प्रदूषण किसी स्तर पर नज़र नहीं आएगा। जैन मनीषियों की दृष्टि से सात्विक आहार वह है, जो जीवन तथा अनुशासन में सहायक हो, जो मादक न हो, जो कर्तव्य-विमुख न बनाए। सात्विक आहार अथवा सात्विक जीवन अर्थात् पर्यावरण का शुद्ध होना।

यह सर्वविदित है कि जब मांसाहार की बात की जाती है तो मांस मात्र उन्हीं पशु-पक्षियों का खाया जाता है, जो शाकाहारी हैं, शेर, कुत्ता व बिल्ली जैसे मांसाहारियों का मांस कोई नहीं खाता। अतः शाकाहार स्वाभाविक भोजन है। कहते हैं कि मनुष्य का विकास बंदर से हुआ है। बंदर को ही डार्विन ने अपने विकासवादी सिद्धान्त का केन्द्र माना है अर्थात् बन्दर ही विकास प्राप्त करते-करते मनुष्य रूप में परिवर्तित हुआ है। वह स्वयं शाकाहारी पशु है फलतः प्रकृति से मनुष्य भी शाकाहारी है। यह कहना कि मांसाहार अधिक पौष्टिक, संतुलित, प्रोटीन-विटामिन युक्त होता है, केवल अज्ञानता का सूचक है। दालों में, सोयाबीन में, मूंगफली में, सेब, संतरे में क्या कम प्रोटीन एवं विटामिन होते हैं? कहने की आवश्यकता नहीं कि शाकाहार पर्यावरण की सुरक्षा का बोध कराने वाला है। इससे जीवन में अनुशासन आता है। भोजन में भी अनुशासन संयम न रखा तो निश्चित रूप से हमारा अनिष्ट होगा।

तीर्थंकरों के जन्म से पूर्व उनकी माताओं द्वारा देखे गए सोलह स्वप्न पशु-पक्षी एवं प्राकृतिक **जगत् से सम्बद्ध** हैं। तीर्थंकरों की समवसरण सभा में प्रमद वन,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशोक, सप्तपर्ण और आम्र वृक्षों का वर्णन है। साथ ही प्रत्येक जीव का स्थान निर्धारित है तथा सभी को तीर्थंकर वाणी सुनने का समानाधिकार है।

पाँच अणुव्रत- अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह भौतिक पर्यावरण की शुद्धि में सार्थक हैं। मन, वचन और कर्म से किसी जीव की हिंसा न करना अहिंसा है। अशुद्ध जल का प्रयोग करने एवं अनावश्यक जल का प्रवाह भी अनन्त जल कायिक जीवों की हिंसा है। जल का उपयोग छानकर एवं उबालकर करना प्रत्येक श्रावक का कर्तव्य है। इस विधि से चिकित्सा विज्ञान भी सहमत है। इसके साथ-साथ आज पूरे विश्व में जला भाव के गंभीर संकट के कारण तृतीय विश्वयुद्ध की आशंका व्यक्त की जाने लगे है। इससे बचने का एकमात्र उपाय जैन विधि से की गयी जल शुद्धि एवं मितव्यता ही है। अहिंसा और सत्य अन्योन्याश्रित हैं। मनुष्य को हित, मित, प्रिय और हिंसारहित वचन बोलना चाहिए। आत्मवंचना, कूटनीति और धोखे का त्याग सत्य वचन से ही होता है। अतिचारों को दूर कर सत्य का पालन किया जाए तो दुष्प्रवृत्तियाँ देश की आर्थिक नींव नहीं हिला सकेंगी।

मन, कर्म और वचन से क़िसी की संपत्ति बिना आज्ञा के न लेना और न देना अचौर्य अथवा अस्तेय है। चोरी की प्रेरणा देना, चोरी की वस्तु खरीदना, अनुचित के तरीके से धन संग्रह, राजाज्ञा का उल्लंघन, कम तौलना, मिलावट करना आदि अचौर्य अणुव्रत के अतिचार हैं। वनों की अवैध कटाई, अभ्यारण्यों में वन्य पशुओं का शिकार ,दोषयुक्त गैस उपकरणों व वाहनों का प्रयोग, रिश्वत लेना और देना स्तेय कर्म हैं। दहेज-दाह जैसे कुकृत्यों के पीछे क्रूर तरीके से धन हथियाना चौर्य कर्म और हिंसा है। अचौर्य व्रत पालन से सामाजिक अधिकारों की रक्षा होती है। इससे व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का आर्थिक पर्यावरण शुद्ध होता है।

जैनाचार्यों ने परिग्रह के २४ भेद बताये हैं। इनके भोगोपभोग की इच्छा परिग्रह है और नि:स्पृहता अपरिग्रह। अधिक सवारी रखना, अनावश्यक वस्तुएँ एकत्र करना, दूसरों का वैभव देखकर आश्चर्य एवं लोभ करना और बहुत भार लादना परिग्रह परिणाम व्रत के दोष हैं। लोभ के वशीभूत मानव परिग्रह संचय करता है। परिग्रह के संचय और रक्षा के लिए हिंसा, चोरी, झूठ व कुशीलता की ओर प्रवृत्त होता है। परिग्रह के परिणामस्वरूप अशांति, असंतोष व तनाव का जन्म होता है। परिग्रह परिमाण व्रत के पालन से आवश्यकताएँ सीमित तथा तृष्णा व कामनाएँ नियंत्रित होती हैं। फलत: प्राकृतिक संसाधनों की बचत होती है। अपरिग्रह से अहंकार नहीं आता और सच्ची मानवता का विकास होता है।

पर्यावरण असंतुलन का सबसे बड़ा कारण मानव और उसकी निरंतर बढ़ती जनसंख्या है। जनसंख्या नियंत्रण के लिए ब्रह्मचर्य व्रत सार्थक है। यह व्रत श्रावक के लिये स्वदार संतोष तथा श्रमण के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य का निर्देश करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परविवाहकरण, अनंग कीड़ा, अपशब्द का प्रयोग, विषय सेवन की तीव्र इच्छा तथा व्यभिचारिणी स्त्री के घर आना-जाना ये सब इस व्रत के अतिचार हैं। इस व्रत का पालन न करने से सामाजिक प्रदूषण फैलता है। इसी का दुष्परिणाम है एड्स के रोगियों की दिन-प्रतिदिन बढ़ती संख्या। इसका समाधान ब्रह्मचर्य व्रत के पालन से ही संभव है, यह व्रत वैयक्तिक, सामाजिक और शारीरिक पर्यावरण की शुद्धि हेतु वरदान है। अत: इन पांच अणुव्रतों में अणुबम जैसे विस्फोटों का शांत करने की सामर्थ्य है। आवश्यकता है अणुव्रत के प्रयोग की।

श्रमणों में सप्त गुण एवं समितियों के पालन में सूक्ष्म जीवों के प्रति अहिंसात्मक दृष्टि है। उनके पंचेन्द्रिय निग्रह में निर्विकार भाव का, नग्नत्व में अपरिग्रह का, सामायिक, स्तुति, वंदना में आत्मशुद्धि का, द्वादशानुप्रेक्षाओं के मनन और क्षमादि दस धर्म के अनुशीलन में आत्मोथान का चिंतन समाहित है। अत: श्रावक एवं श्रमणाचार संहिता आचार शुद्धि, भाव शुद्धि और अन्ततः पर्यावरण शुद्धि का पथ प्रशस्त करती है। वैचारिक हिंसा शारीरिक हिंसा से कम नहीं है। युद्धक्षेत्रमें युद्ध तो बाद में लड़े जाते हैं उससे पूर्व युद्ध मस्तिष्क में लड़े जाते हैं। वैचारिक परिग्रह की ग्रन्थि के परिणाम बड़े भयावह होते हैं। इससे बचने का जो उपाय महावीर ने बताया वह है- अनेकान्त दर्शन। मैं जो कहता हूँ वही सही है, ऐसा आग्रह-विग्रह को जन्म देता है। भगवान् ने कहा वस्तु के अनन्त धर्म हो सकते हैं, अनन्त पर्याय हो सकते हैं। उन्हें अनन्त कोणों से देखो- अनन्त चक्षुओं से देखो। आज विश्व में जितनी समस्याएं हैं, उनमें से अधिकांश की पृष्ठभूमि है- मनुष्य की एकान्तिक दृष्टि। हमारी सोच या हमारा विचार ही सही है बाकी मिथ्या ऐसी मान्यता समस्या की उद्गम भूमि है। आज अनेक राष्ट्र आपस में झगड़ रहे हैं- भीषण युद्ध हो रहे हैं। राज्यों के बीच तनाव है। राज्यों का विभाजन हो रहा है। उत्तर प्रदेश से उत्तरांचल, मध्यप्रदेश से छत्तीसगढ़ और बिहार से झारखण्ड अलग हुआ। जिलों का भी विभाजन हो रहा है। विभाजन के बीच वैमनस्य की दीवारें खड़ी हो रही हैं। दुनियां साथ मेल-जोल की बात तो दूर रही, आज हमारे पड़ोसी देश के साथ भी संबंध मैत्री पूर्ण नहीं हैं। भाई-भाई के बीच पारस्परिकता और भ्रातृत्व समाप्त होता जा रहा है। सास-बहू के संबंध तनावग्रस्त हैं। फलत: संयुक्त परिवार टूटते जा रहे हैं। विभक्त परिवारों की संख्या बढ़ रही है। यह सब क्यों हो रहा है? हमारी भव्य सांस्कृतिक विरासत पर एक के बाद एक प्रश्नचिन्ह क्यों लगते जा रहे हैं? कारण एक ही है हमारा स्वार्थपरक एकान्तिक दृष्टिकोण, ममकार और अहंकार की यह अवतरण भूमि है और जहाँ ये निवास करते हैं वहां विनाश निश्चित है। सभी चीजों को सापेक्षभाव से देखना और प्रत्येक स्थिति में रहे हुए सत्य के अंश का साक्षात्कार करना यही अनेकान्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। जो अनेकान्त दृष्टि को धारण कर लेता है, वह विवादों से दूर रह सकता है, समस्याओं को सहजता के साथ सुलझा सकता है। जीवन में शांति और सच्चे आनन्द की अनुभूति कर सकता है। जो अपनी दृष्टि को बदल सकता है उसे सृष्टि को बदलने की जरूरत ही नहीं रहती। भगवान् महावीर ने कहा- जो मेरा है वही सच्चा है यह अभिमत ठीक नहीं। इस दृष्टिकोण का विकास करो। सापेक्ष और समन्वयपरक दृष्टिकोण का विकास ही शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का आधार है। विश्व बंधुत्व और विश्वशांति के स्वप्न को साकार रूप देने का एक ही मार्ग है- भगवान् महावीर का अनेकान्त दर्शन। इक्कीसवीं सदी में अनेकान्त दर्शन का यह संदेश मानवजाति के उत्थान का जीवन मंत्र बन सकता है।

विश्व में पर्यावरण की रक्षा हेतु हमें जैन धर्म की अहिंसा एवं अपरिग्रह की दृष्टि को अपनाना होगा। हमें वन्य जन्तुओं की हत्या को रोकना होगा और वृक्षों, वनों की अन्धाधुन्ध कटाई बंद करनी होगी। हमारे हृदय में वृक्षों-वन्य प्राणियों के प्रति करुणा और वात्सल्यता का भाव पैदा होना चाहिए। अपने को सम्पन्न बनाने के लिए हम प्रकृति को निर्धन बना रहे हैं। यह परिग्रह हानिकारक है, इसे त्यागना पड़ेगा। जैन धर्म इच्छाओं और वस्तुओं के संग्रह को सीमित रखने की दृष्टि प्रदान करता है इसलिए प्रकृति की संपदा को सुरक्षित रखना होगा। हमारे औद्योगिक संस्थान प्रगति के सोपान होकर भी प्रदूषण के जनक हैं। कारखानों में जो निरंतर उत्पादन हो रहा है, उससे हमारे लिए सुख-सुविधाएं जुटाई जाती हैं। उनसे हमारी सम्पन्नता में वृद्धि होती है, लेकिन किसे मालूम नहीं कि हमारी परिग्रह वृत्ति ने अन्य प्राणियों के लिए कितनी समस्यायें पैदा की हैं। पानी में हानिकारक रासायनिक तत्त्व मिले रहते हैं। हमारी परिग्रहवृत्ति इसके लिए जिम्मेदार है। वनों- वृक्षों को काटकर हम अपनी संपन्नता को बढ़ा सकते हैं, लेकिन अनेक पशु-पक्षियों को बेघर बना देते हैं, यह हिंसा नहीं तो और क्या है? प्रकृति के बिना प्राणी कैसे रहेगा? सभी जीवों, प्राणियों के साथ एकात्मकता पैदा करना, उनके अस्तित्व को स्वीकार करना, अहिंसा को व्यावहारिक रूप देना है। जब संयम की बात जैन धर्म में कही जाती है तो प्रकृति के संतुलन की बात की जाती है। प्रकृति में असंतुलन आना, पदार्थों की स्थिति में गड़बड़ी या असंतुलन आना पर्यावरण की समस्या पैदा कर देता है।

प्रकृति के साथ मनुष्य का तादात्म्य जुड़ा होता तो वह बिना सोचे-विचारे इस प्रकार उसका दोहन नहीं कर पाता। प्रकृति का अनियंत्रित दोहन सीधा प्रलय को आमंत्रण है। हम जानते हैं इस अवसर्पिणी काल का छठा आरा प्रलय की कहानी लिखेगा। पर अभी तो हजारों वर्षों का अंतराल है। जो घटना बहुत समय बाद घटित होने वाली है, वह आज घटित होती है तो अस्वाभाविक लगती है। प्राकृतिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थितियों में आए बदलाव से मनुष्य की सोच तो बदली है, पर आचरण नहीं बदला है। जब तक उसकी आर्थिक दृष्टि स्वस्थ व संतुलित नहीं होगी, पर्यावरण संतुलित नहीं हो सकता।

जहाँ संयम-संतुलन नहीं, वहीं पर्यावरण की समस्या है, प्रदूषण है, हिंसा है, मोहातिरेक है, मूर्च्छा है, परिग्रह है, द्वेष और घृणा है। वनस्पति, पेड़-पौधे, नदी, पशु-पक्षी सभी के जीवन में संयम-सुरक्षा की भावना हो। सह-अस्तित्व पर विश्वास हो तो न हिंसा होगी, न घृणा, न प्रदूषण। लोभ-मोह हमारे पर्यावरण को दूषित करने के मूल कारण हैं और यहीं हिंसा की वृत्ति भी है। आज हम अपरिग्रह और अहिंसा का व्रत लेकर आगे बढ़ें तो इस धरती को अवश्य प्रदूषण-मुक्त किया जा सकता है और समाज सुखी और समृद्ध हो सकता है।

✸

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण

रानू गांधी*

पर्यावरण या समग्र प्रकृति एक दूसरे का पर्याय है। केवल नदी, जल, जंगल, पहाड़, पशु-पक्षी और हवा ही पर्यावरण नहीं हैं। हमारे सामाजिक एवं आर्थिक सरोकार और हमारी सांस्कृतिक-राजनैतिक, समसामयिक परिस्थितियाँ भी पर्यावरण की फलक हैं। वस्तुत: प्राकृतिक पर्यावरण इन सभी फलकों को सर्वाधिक प्रभावित करता है, क्योंकि विकास की धुरी में प्राकृतिक संसाधनों का ही प्रमुख स्थान है।

संतुलित पर्यावरण का अर्थ जीवन और जगत् को पोषण देना है। इस धरती पर जो कुछ दृश्यमान या विद्यमान है, वह पोषित हो, यही पर्यावरण का अभीष्ट है और यह दायित्व चेतनशील मनुष्य का है। पशु-पक्षी, वनस्पतियाँ और पेड़-पौधे मनुष्य से कम चेतनशील हैं। यदि मनुष्य अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए उनका विनाश करता है, तो हम न तो उसे चेतनशील कह सकते हैं और न विवेकशील।

जैन धर्म विश्व का वह प्रथम धर्म है जिसने धर्म का मूलाधार पर्यावरण सुरक्षा को मान्य किया है। भगवान् महावीर का सबसे पहला उपदेश **आचारांग** में संरक्षित किया गया है। **आचारांग** का पहला अध्ययन षट्काय-जीवों की रक्षार्थ रचा गया। महावीर ने स्पष्ट: जोर दे कर कहा कि पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और वनस्पति में जीव हैं साक्षात् प्राणधारी जीव। इन्हें अपने ढंग से जीने देना धर्म है, इन्हें कष्ट पहुँचाना या नष्ट करना हिंसा है, पाप है। अहिंसा परम धर्म है और हिंसा महा पाप। इन्हीं षट्कायिक जीवों की संतति पुरानी शब्दावली में संसार और आधुनिक शब्दावली में पर्यावरण से अभिहित है। अपने संयत और सम्यक् आचरण से इस षट्कायिक पर्यावरणीय संस्कृति की रक्षा करना जैन धर्म का मूलाधार है।

जैन धर्म ने ही सबसे पहले पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और वनस्पतियों को जीव कहा। त्रसकाय जीवों को तो और भी विचारक जीव या प्राणी मानते रहे। अब विज्ञान ने सर जगदीशचन्द्र बसु की खोज के आधार पर वनस्पतियों को जीव मानना प्रारम्भ कर दिया, किन्तु षट्कायों के पहले चार काय पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि को जीव की श्रेणी में केवल जैन ही रखते हैं और उन्हें अन्य जीवों की भाँति अपने धर्माचार में स्थान दिए हुए हैं। इस आस्थागत अवधारणा के आधार पर न केवल

*प्रथम पुरस्कार प्राप्त आलेख (ग्रुप- ए)

द्वारा- श्री पारसमल गाँधी, २४७/४, लखन कोठारी, दर्जी मोहल्ला, अजमेर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह पृथ्वी प्रत्युत् ब्रहमाण्ड की सारी पृथ्वियाँ, यथा-ग्रह, उपग्रह तथा नक्षत्र, सम्पूर्ण वायु मण्डल, जलाशय तथा अग्निस्त्रोत सब के सब मुख्यत: एकेन्द्रिय जीव हैं, जिनके अधीन असंख्यात त्रसकाय जीवों की द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय योनियाँ आश्रय लिए हुए हैं। इस प्रकार जैन मान्यता के अनुसार सम्पूर्ण ब्राह्माण्ड अथवा लोक-रचना जीव तत्व से ओत-प्रोत है। सम्पूर्ण लोक में जीव एवं अजीव ये दो ही तत्व हैं, किन्तु जीव की प्रधानता के कारण सम्पूर्ण पर्यावरण एक जीवंत इकाई है। जैन धर्म का दार्शनिक आधार है कि सम्पूर्ण पर्यावरण एक जीवंत इकाई है। सम्पूर्ण लोक रचना में जीव तत्व की प्रमुख भूमिका है। इसी उपग्रह से संसार का सामूहिक जीवन स्थिर है और उसी के निमित्त से लोक रचना का संपूर्ण पर्यावरण जीवंत है।

जैन धर्म का नारा- "जीओ और जीने दो" इस में पर्यावरण के जीव तत्व के प्रति आदर भाव निहित है और पर्यावरण की जैन अवधारणा में शामिल है- पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, ऊर्जा, पेड़-पौधे, वनस्पतियाँ, हर प्रकार के कीट-पतंग, जीव-जन्तु, स्वयं मनुष्य और यहाँ तक कि न दिखाई देने वाली देव एवं नरक योनियाँ भी। इस समग्र पर्यावरण का आशय या तात्पर्य है इसे अपनी तरह जीने और मरने के मौलिक अधिकार की स्वीकृति। दूसरे शब्दों में पर्यावरण सुरक्षा, स्वयं पर्यावरण के जीव तत्व द्वारा, पर्यावरणीय सुख के लिए उसमें किसी भी प्रकार की हस्तक्षेप न करना है। जैन धर्म पर्यावरण को मनुष्य के सुख का उपकरण मात्र नहीं मानता। पर्यावरण की उदारता का लाभ उठाते हुए उसे अपना गुलाम बनाना, अपनी लिप्सा के लिए उसका विनाश या तोड़-फोड़ करना जैन दृष्टि से घोर अपराध है। हिंसक मनुष्य घोर नारकीय दुखों का बंध करता है और अपनी दु:ख श्रृंखला को कभी न समाप्त होने वाली आयु प्रदान करता है। पर्यावरण को अपने ढंग से चलने देना, उसमें कम से कम हस्तक्षेप करना पर्यावरण सुरक्षा की स्वाभाविक गारंटी है।

मितव्ययता जैन धर्म-दर्शन के व्यावहारिक पहल की रीढ़ है। इसकी परिभाषा है-विवेकसम्मत आवश्यकता की पूर्ति के लिए कम से कम वस्तुओं का उपभोग। मितव्ययता की पूर्व शर्त है, वैराग्य और त्याग भाव, जिससे फलित होती है पर वस्तुओं की लिप्सा की कमी। कम हो चुकी या कम होती हुई लिप्साओं से वस्तुओं की कम से कम आवश्यकताओं की अनुभूति पैदा होती है और इसका मापदण्ड है वस्तुओं का कम से कम मितव्ययी उपयोग। जीने के हर कदम पर जैन इस मितव्ययता के सूत्र को लागू करते हैं। कम से कम खनिज, हवा, पानी, ऊर्जा, वनस्पतियाँ उपभोग में ली जाएँ। जिस आचरण से किसी जीव का प्राणहरण हो, उससे बचा जाये।

धर्म ने संसार के स्वरूप का विवेचन विभिन्न द्रव्यों और पदार्थों के माध्यम से किया है। वह केवल आत्मा और परमात्मा के स्वरूप पर ही विचार नहीं करता,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपितु मनुष्य और उसके आसपास के वातावरण का भी अध्ययन प्रस्तुत करता है। प्रकृति और मनुष्य को गहराई से जानने और समझने का प्रयत्न ही पर्यावरण को सही ढंग से संरक्षित करने का आधार है। मनुष्य सम्पदा, जल-समूह एवं वायुमण्डल के समन्वित आवरण का नाम है पर्यावरण। वस्तुत: सम्पूर्ण प्रकृति और मनुष्य के परस्पर सम्बन्धों में मधुरता का नाम ही पर्यावरण संरक्षण है। पर्यावरण के विभिन्न आधार और साधन हो सकते हैं, किन्तु धर्म उनमें प्रमुख आधार है। समता, अहिंसा, संतोष, अपरिग्रह वृत्ति, शाकाहार का व्यवहार आदि जीवन मूल्य जैनों का आधार स्तम्भ है।

धर्म के स्वरूप को प्रतिपादित करत्से हुए जैन साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण गाथा आयी है:-

धम्मो वत्थुसहावो, खमादिभावो य् दसविहो धम्मो।
रयणत्रयं च धम्मो, जीवाणं रक्खणं धम्मो।।

वस्तु का स्वभाव धर्म है। क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि आत्मा के दस भाव धर्म हैं। रत्नत्रय (सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र) धर्म हैं तथा जीवों का रक्षण करना धर्म है। धर्म की यह परिभाषा जीवन के विभिन्न पक्षों को समुन्नत करने वाली है। पर्यावरण की शुद्धता के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार के धर्म की बड़ी सार्थकता है।

वस्तु का स्वभाव-धर्म

वस्तु का स्वभाव धर्म है। शरीर का स्वभाव है-जन्म लेना, वृद्धि करना और समय आने पर नष्ट हो जाना इत्यादि। हमने शरीर के स्वभाव को समझने में जो भूल की वही भूल प्रकृति को समझने में करते हैं। प्रकृति के प्राणतत्व का संवेदन हमने अपनी आत्मा में नहीं किया। हम यह नहीं जान सके कि वृक्ष हमसे अधिक करुणावान एवं परोपकारी हैं। प्रकृति का स्वभाव जीवन्त सन्तुलन बनाये रखने का है, उसे हम अनदेखा कर गये। हमने प्रकृति को केवल वस्तु मान लिया है लेकिन वस्तु का स्वभाव क्या है यह जानने की कोशिश नहीं की। परिणामस्वरूप अपने क्षणिक सुख और लालच की तृप्ति के लिए प्रकृति को रौंद डाला, उसे क्षत-विक्षत कर दिया, उसका परिणाम सामने है। जैसे मनुष्य जब अपने स्वभाव को खो देता है तब वह क्रोध करता है, विनाश की गतिविधियों में लिप्त होता है वैसे ही स्वभाव से विपरीत की जा रही प्रवृत्तियाँ आज अनेक समस्यायें पैदा कर रही हैं।

शरीर, प्रकृति एवं अन्य भौतिक वस्तुओं के स्वभाव की जानकारी के साथ व्यक्ति अपनी आत्मा के स्वभाव को जान लेगा कि वह दयालु है, जीवन्त है, निर्भय है, तब यह भी जान जायेगा कि विश्व के सभी प्राणियों का स्वभाव यही है। तब अपनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा के समान ही अन्य प्राणियों की हत्या, दमन और शोषण को अनावश्यक समझेगा। इस समता भाव से ही क्रूरता मिट सकती है। आत्मा के इसी स्वभाव को जानने के लिए क्षमा, मृदुता, सरलता, पवित्रता, सत्य, संयम, तप, त्याग, निस्पृही वृत्ति, ब्रहचर्य इन दस प्रकार के आत्मिक गुणों को जानने को धर्म कहा गया है। इन गुणों की साधना से आत्मा और जगत् के वास्तविक स्वभाव के दर्शन हो सकते हैं। इसी स्वभावरूपी चादर के सम्बन्ध में संत कबीर ने कहा है:-

यहि चादर सुर-नर मुनि ओढी, ओढ़ के मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन कर ओढ़े, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।।

जतन की चादर:- विश्व के चेतन, अचेतन सभी पदार्थों के आवरण से देवता, मनुष्य, ज्ञानीजन सभी व्याप्त रहते हैं। पर्यावरण की चादर उन्हें ढके रहती है, किन्तु अज्ञानी जन अपने स्वभाव को न जानने वाले अधार्मिक, उस प्रकृति की चादर को मैली कर देते हैं। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए पर्यावरण दूषित कर देते हैं। किन्तु स्वभाव को जानने वाले धार्मिक व्यक्ति संसार के सभी पदार्थों के साथ जतन (यत्नपूर्वक) का व्यवहार करते हैं। न अपने स्वभाव को बदलने देते हैं और न ही पर्यावरण और प्रकृति के स्वभाव में हस्तक्षेप करते हैं। प्रकृति के सन्तुलन को ज्यो का त्यों बनाए रखना ही परमात्मा की प्राप्ति है। तभी साधक कह सकता है-"ज्यो की त्यों धर दीनी चदरिया" अपने स्वभाव में लीन होना ही स्वस्थ होना है।

जब पर्यावरण स्वस्थ होगा तब प्राणियों का जीवन स्वस्थ होगा। स्वस्थ जीवन ही धर्म का आधार है। अत: स्वभावरूपी धर्म पर्यावरण शोधन का मूलभूत उपाय है, साधना है, तो आत्मा साक्षात्काररूपी धर्म विशुद्ध पर्यावरण का साध्य है, उदेश्य है। कबीर ने जिसे "जतन" कहा है जैन दर्शन के चिन्तकों ने हजारों वर्ष पूर्व उसे यत्नाचार धर्म के रूप में प्रतिपादित कर दिया था। उनका उद्घोष था कि संसार मे चारों ओर इतनी जीवन्त प्रकृति भरी हुई है कि मनुष्य जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करते समय उनके घात-प्रतिघात से बच नहीं सकता किन्तु वह प्रयत्न (जतन) तो कर सकता है कि उसके जीवन-यापन के कार्यों में कम से कम प्राणियों का घात हो। उसकी इस अहिंसक भावना से ही करोड़ों प्राणियों को जीवनदान मिल सकत है। प्रकृति का अधिकांश भाग जीवन्त बना रह सकता है जैसा कि कहा है-

जयं चरे जयं चिट्ठे जयं मासे जयं सये।
जयं भुजंतो भासंतो, पावकम्मं न बंधई।।

व्यक्ति यत्नपूर्वक चले, यत्नपूर्वक ठहरे, बैठे, यत्नपूर्वक सोए, यत्नपूर्वक भोजन करे और यत्नपूर्वक बोले तो इस प्रकार के जीवन से वह पाप-कर्म को नहीं बांधता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चलने, ठहरने, बैठने और सोने की क्रियाओं का धरती के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन क्रियाओं को यदि विवेकपूर्वक और आवश्यकता के अनुसार सीमित नहीं किया जा सकता तो सारे संसार की हिंसा इनमें समा जाती है। दो गज जमीन की आवश्यकता के लिए पूरा विश्व ही छोटा पड़ने लगता है। ये क्रियाऐं फिर हमारी आँखों के दायरे से बाहर होती हैं। अत: इनके लिए की गयी हिंसा, बेइमानी और शोषण हमें दिखता नहीं है, या हम उसे अनदेखा कर देते हैं। अपना पाप दूसरों पर लाद देते हैं। इससे पर्यावरण के सभी घटक दूषित हो जाते हैं। धरती की सारी खनिज सम्पदा हमारे ठहरने और सोने के सुख के लिए बलि चढ़ जाती है। दूसरी महत्वपूर्ण क्रिया भोजन की है। आचार्य कहते हैं यत्नपूर्वक भोजन करो। इस सूत्र में अल्प भोजन, शुद्ध भोजन, शाकाहार आदि सभी के गुण समाये हुए हैं। भोजन प्राप्ति में जब तक अपना स्वयं का श्रम एवं साधन की शुद्धता सम्मिलित न हो तब तक वह यत्नपूर्वक भोजन नहीं कहलाता है। व्यक्ति यदि इतनी सावधानी अपने भोजन में कर ले तो अतिभोजन और कुभोजन की समस्या समाप्त हो सकती है। पौष्टिक और शाकाहारी भोजन से कई प्रकार के स्वास्थ्य प्रदूषणों को रोका जा सकता है। यत्नपूर्वक प्रयोग करने की नीति जहाँ व्यक्ति को हित, मित और प्रिय बोलने के लिए प्रेरित करती है, वहीं इससे ध्वनि-प्रदूषणों को रोकने में भी मदद मिल सकती है। अत: हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि अहिंसा, संयम व तप धर्म है।

इस तीर्थंकरीय आभूषण को हम सभी को धारण करना चाहिए।

खोमेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं ण केणवि।।

अर्थात् मैं समस्त जीवों को क्षमा करता हूँ, सब जीव मुझको क्षमा करें, मेरी सभी प्राणियों से मित्रता है, किसी से भी मेरा वैर नहीं है।

✸

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण

रोहित गांधी*

तीर्थंकरों की अवधारणाओं को समझने पर एक परिणाम निकलता है कि जैन, व्यक्ति नहीं, सम्प्रदाय व समाज नहीं अपितु एक सृष्टि संरक्षण का व्यावहारिक नियम है और यदि इसे धर्म का नाम दिया जाता है तो नि:सन्देह यह विश्व धर्म है। वर्तमान समय में धर्म एक फिरका, मजहब या विशिष्ट समूह की पारम्परिक शैली या नीति को माना जाता है। किन्तु, जैन धर्म की तीर्थंकरीय विचारधारा इन कठोर दीवारों को तोड़कर विश्व मैत्री का पाठ पढ़ाती है और यह अहिंसा रूपी नींव पर आधारित है। अहिंसा के आधार पर सृष्टि का संवर्धन किया जाता है। सच तो यह है कि अहिंसा सृष्टि का 'क्लोरोफिल' है। सभी जीव एक-दूसरे के अभिन्न अंग हैं जो अहिंसा के आधार पर पनपते हैं। यह अवधारणा सभी तीर्थंकरों की है। वस्तुत: यही सम्पूर्ण जैवमण्डल के संरक्षण का आधार है। २४वें तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी का "जीओ और जीने दो" का प्रभावशाली और चिरस्थाई उद्‌घोष न केवल मानवीय मूल्यों की सुरक्षा की विद्या सिखाता है, अपितु सम्पूर्ण पर्यावरण के अस्तित्व का मूल मन्त्र देता है। सभी तीर्थंकरों का सम्मिलित उद्‌घोष प्राणिमात्र की रक्षा एवं पर्यावरण संरक्षण की अचूक औषधि है।

वर्तमान विश्व पर्यावरण संकट की चरम सीमा पर पहुँच चुका है। एक ओर जल, वायु एवं मिट्टी प्रदूषण मानव, पशु, वनस्पति और प्राकृतिक घटकों पर जानलेवा प्रभाव डाल रहे हैं, तो दूसरी ओर वन, खनिज, जल एवं अन्य संसाधनों के बेतहाशा दोहन से पर्यावरण अवनयन बड़ी द्रुत गति से हो रहा है। भूमण्डलीय ताप बढ़ने से बर्फ पिघलने के कारण निकट भविष्य में समुद्री तटों पर रहने वाली, विश्व की लगभग आधी जनसंख्या के घर जल स्तर बढ़ने से जलमग्न हो जायेंगे।

यदि हमें इस सृष्टि को बचाना है तो नि:संदेह, तीर्थंकरों के पर्यावरण सिद्धान्त के आधार पर चलना होगा। उनका यह सिद्धान्त इसलिए कारगर है कि वे पर्यावरण के रक्षक रहे हैं। इस सभी के लांछन या चिह्न तक पर्यावरणीय घटकों पर आधारित हैं। २४ में से ११ तीर्थंकरों के चिन्ह तो सजीवों पर आधारित हैं। उनमें भी १५ स्थल

*द्वितीय पुरस्कार प्राप्त आलेख (ग्रुप- ए)

द्वारा श्री जेठमल गाँधी २४७/४, लखन कोठारी, दर्जी मोहल्ला, अजमेर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं जलीय जीवों, एक पक्षी व ३ वनस्पति पर आधारित हैं। इसके अतिरिक्त चन्द्रप्रभ का लांछन चन्द्रमा शीतल पर्यावरण के आधार पर मानव स्वभाव के तमोगुण का ह्रास करने का संदेश देता है। सुपार्श्व का स्वस्तिक चिन्ह विश्व की मांगलिक प्रवृत्ति को दर्शाकर मानसिक प्रदूषण को दूर करने का पाठ पढ़ाता है। १५वें तीर्थंकर धर्मनाथ का चिन्ह मंगल वज्र विश्व के पर्यावरण पर होने वाले संभावित वज्रपात से सुरक्षा का शस्त्र प्रदान करता है जिसका आध्यात्मिक आधार अहिंसा ही है। मल्लिनाथ का चिन्ह मंगलकलश, सुख-शांति एवं मंगलमय जीवन का द्योतक है। २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ का चिन्ह शंख तो अहिंसा का निरन्तर शंखनाद कर पर्यावरण सुरक्षा हेतु सम्पूर्ण मानव जाति का आह्वान करता आ रहा है।

यही नहीं इन सभी तीर्थंकरों के यक्ष व यक्षिणियों के वाहन भी पर्यावरणीय घटक रहे हैं। ४८ रक्षकों में से ४४ स्थलीय व जलीय पशुओं व वनस्पति पर ही आधारित हैं। उक्त दोनों उदाहरण तीर्थंकरों की पर्यावरणीय ओतप्रोतमूलक दर्शन का बोध कराते हैं।

वनस्पति एवं व्यावहारिक जीवन का अटूट सम्बन्ध है। यों, वनस्पति की सुरक्षा की बात न्यूनाधिक रूप से सभी धर्म करते हैं, पर जैन धर्म में तीर्थंकरों के सम्पूर्ण चिन्तन की धुरी वनस्पति संरक्षण है। भरतबाहुबलीमहाकाव्य में वृक्ष वर्णनों के साथ ही वन-संरक्षण का बृहत् वर्णन मिलता है। **आदिपुराण** में वन संरक्षण एवं सघन वनों का जो वर्णन है, उसे अरण्य संस्कृति कहा जाता है। इस संस्कृति के अनुसार सम्पूर्ण विश्व एक वृक्ष है जिसे 'लोक' कहा गया है। लोक के एक भाग पर मानव रहता है जो जम्बूद्वीप के नाम से जाना जाता है। यों, मानव प्रारम्भ से कल्पतरु पर निर्भर रहता आया है।

तीर्थंकरों के अनुसार एकेन्द्रिय होने के कारण वनस्पति जीवन से परिपूर्ण है। उनके अनुसार किसी भी जीव और वनस्पति को नष्ट नहीं करना चाहिए। **आचारांग** में कहा भी है- सव्वे पाणा सव्वे भूया, सव्वे जीवा सव्वे सत्ता ण हंतव्वा अर्थात् कोई भी प्राणी, कोई भी जीव-जन्तु, कोई भी प्राणवान नहीं मारा जाना चाहिए, क्योंकि इनको नष्ट करने से सभी कष्टों में वृद्धि होगी। **आचारांग** में ही आगे कहा है-

पाणा पाणे किलेसंति....., बहुदुक्खा हु जंतवो। जीव, जीव को सताता है। वास्तव में इसी कारण हर जीव बहुत कष्ट में है। महावीर ने अपने विहार के समय हर प्राणी का पूरा-पूरा ध्यान रखा जैसा कि पुढविं च आउकायं च तेउकायं च वायुकायं च। पणगाइं बीयहरियाइं तसकायं च सव्वसो णच्चा अर्थात् पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, शैवाल, बीज और हरी वनस्पति तथा त्रस काय जीव हैं, ऐसा जानकर वे विहार करते थे। वनस्पति को प्रत्येक तीर्थंकर ने जीव माना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। जैन श्रावक के नियमों के अनुसार दैनिक जीवन में इनके उपयोग को वर्जित माना गया है। श्रावक के २४ नियमों में कहा है।

सचित्तदल विग्गई पन्नी तंबुल-वत्थ-कुसुमेसु।
वाहण-समण-विलेवण, बम्भदिसि नाहण भत्तेसु।।

अर्थात् फूलों के प्रयोग में भी मितव्ययी होना चाहिए, यहाँ तक कि सूखे मेवों, खाद्यान्न बीजों आदि का उपयोग यथासंभव कम से कम करना चाहिए।

आगमों में वनस्पति में जीव होने का पूर्ण प्रमाण मिलता है। यहाँ तक कि इनमें दूसरी समस्त क्रियाओं की अनुभूति भी मानव की तरह ही होती है। **आचारांग** में लिखा है-

से बेमि– इमं पि जातिधम्मयं, एयं पि जातिधम्मयं।
मनुष्य भी जन्म लेता है और वनस्पति भी जन्म लेती है।

इमं पि वुड्ढिधम्मयं, एयं पि वुड्ढिधम्मयं। यह भी वृद्धि धर्मवाला होता है और वनस्पति भी।

इमं पि छिण्णं मिलाति, एयं पि छिण्णं मिलाति! मनुष्य भी कटा हुआ उदास होता है और वनस्पति भी काटने पर सूखने से निर्जीव हो जाती है। इमं पि आहारगं, एयं पि आहारागं ! मनुष्य भी आहार करने वाला होता है और वनस्पति भी।

इमं पि अणितियं, एयं पि अणितियं, यह भी नाशवान होता है और वनस्पति भी नाशवान होती है।

इमं पि असासयं, एयं पि असासयं, मनुष्य भी हमेशा रहने वाला नहीं और वनस्पति भी नाशवान है।

इमं पि चयोवचइयं, एयं पि चयोवचइयं, नाशवान मनुष्य भी बढ़ने वाला व क्षय वाला होता है और वनस्पति भी बढ़ने वाली और नाशवान होती है।

इमं पि विप्परिणामधम्मयं, एयं पि विप्परिणामधम्मयं- मनुष्य भी परिवर्तन स्वभाव वाला होता है और वनस्पति भी परिवर्तन स्वभाव वाली होती है।

वनस्पति के उपयोग का निषेध करते हुए तीर्थंकरों ने कहा है कि प्रचार-प्रसार और पूजा-पाठ में इनका उपयोग करना पाप है। कहा है-

एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णिरए।

इच्चत्थं गढिए लोए जमिण विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वणस्सतिकम्मसमारभेणं वणस्सतिसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति। यह आशक्ति है, यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोह है, यह मार है और यही नरक है। इन सभी चेतावनियों के उपरांत भी यदि मानव वनस्पति को नष्ट करता है तो सबसे बड़ा अहित करता है। आगमों में उपयोग की वस्तुओं को २६ प्रकार के समूहों में वर्गीकृत किया गया है। श्रावक के लिए इनका परिमाण बताया गया है। नवम परिमाण फूल के बारे में बताता है-पुप्फविहि परिमाण। सातवां सब्जी से सम्बन्धित है- सागविहि परिमाण। उपयोग की दृष्टि से २४ प्रकार के व्यवसायों का निषेध बताया गया है, उन्हें '१५ कर्मादान' कहते हैं। इनमें से प्रथम, द्वितीय तथा तेरहवां वनस्पति संरक्षण पर जोर देते हैं। इनमें से प्रथम 'इंगालकम्म' है, अर्थात् वनस्पति से कोयला निर्माण का कार्य करना। कोयले के व्यवसाय में असंख्य वृक्ष काटे जा रहे हैं। ऐसा करना उचित नहीं, क्योंकि ये वृक्ष ही वायुमण्डल में विभिन्न स्रोतों से प्रवेश करने वाली जहरीली गैसों का अवशोषण करते हैं और जीव को जीवित रखते हैं। द्वितीय व्यवसाय 'वणकम्मे' है और तेरहवां दवग्गिदावणियाकम्मो' जो वन व्यवसाय और वन दहन के बारे में बताता है। वस्तुतः इन्हे करना पाप है। **आचारांगसूत्र** में कहा है कि बुद्धिमान मानव वनस्पति को भी नष्ट नहीं करता है-

मेघवी णेण सयं वणस्सइसत्थं समारंभेज्जा, णेव अण्णेहिं वणस्सइसत्थं
समारंभावेज्जा, णेव अण्णे वणस्सतिसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा।
जस्सेते वणस्सइसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे त्ति बेमि।

हिंसा न करने के ५ नियम हैं। उनका सेवन अतिचार कहलाता है। इनमें से एक अतिचार 'छविच्छेद' है, जो यह बताता है कि औजार से लकड़ी काटना और छिद्र करना भी पाप है। पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री ने 'जैन धर्म' नामक पुस्तक में कतिपय वृक्षों के उपयोग का निषेध किया है। उनमें ऊमर, बड़, पीपल और गूलर का उपयोग वर्जित बताया गया है।

मानव समाज लकड़ी का उपयोग तो अधिकाधिक करता है, पर मानव-कल्याण की इन धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतावनियों के बारे में या तो अनभिज्ञ है या लापरवाह। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त यहाँ तक कहते हैं कि मानव सभी जीव खाने लगा है। अब तो निर्जीव वस्तुएं खाना ही शेष रह गया है।

विहंगमो केवल पतंग जलचरो नाव ही,
चौपायों में भोजनार्थ, केवल चारपाई बच रही।

सभी सजीव वस्तुओं को खाने के बाद उड़ने वाले में पतंग, जलजीवों में नाव व चौपाये जानवरों में केवल चारपाई, यानी खाट ही खाना शेष है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वनस्पति के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष अनेक लाभ हैं। सच तो यह है कि पृथ्वी पर जीवन का आधार मात्र वनस्पति ही है।

आदिपुराण में कहा गया है कि वन, संत एवं मुनिराज कल्याणकारक हैं। ये तीनों समस्त कष्ट दूर कर देते हैं। यहाँ तक कि इनकी छायामात्र में बैठने भर से थकान दूर हो जाती है। वनस्पति की विभिन्नता एवं सघनता के फलस्वरूप विशेष पारिस्थितिकी तत्वों का निर्माण होता है। वनस्पति हार्दिक प्रसन्नता का चिन्ह है। इसका प्रसन्नता एवं शान्ति से उतना ही घनिष्ट सम्बन्ध है जितना कि दूल्हा-दुल्हन के बीच पाया जाता है-

ये रत्युत्सुकं वीक्ष्य वयस्कान्तं स पुष्पकम् ।
बाणाङ्कितंयदुधानं वधूवरमिव प्रियम।।

वन विनाश रोकने के उपाय-: कल्याण एवं सृष्टि के सुसंचालन हेतु वनस्पति का संरक्षण अति आवश्यक है। अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत कर स्वयं जैन शास्त्रों ने इनका संरक्षण आवश्यक बताया है। **भगवतीसूत्र** में कहा गया है- 'पुढ़वीकाइया सव्वे समवेदणा समकिरिया' अर्थात् पृथ्वी की भाँति सभी कार्यों में समान संवेदनशीलता पाई जाती है। अणुसमयं अविरहिए अहारठ्ठे समुपज्जई अर्थात् वनस्पति अन्य की भाँति बिना किसी रुकावट के अपना भोजन पाती हैं। ये भाव वनस्पति में जीवन के तथ्य को प्रमाणित करते हैं एवं इसकी रक्षा हेतु अहिंसा के मार्ग की आवश्यकता को प्रतिपादित करते हैं। इसके साथ ही साथ **आचारांगसूत्र** में मानव एवं अन्य जीवों के सह-अस्तित्व को बनाये रखने हेतु जोर दिया गया है। **भविष्यपुराण** में वृक्ष को पुत्र से भी अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। पुत्र मृत्यु के समय आपकी सेवा करे या न भी करे, परन्तु वृक्ष आपकी जीवनपर्यन्त सेवा करता है।

वृक्ष से दोहरे लाभ मिलते हैं- एक ओर यह जहरीली गैसों को ग्रहण कर प्रदूषण कम करता है और दूसरी ओर प्राणवायु आक्सीजन देता है। वृक्ष काटनेवाले को हत्यारा मान कर सजा देनी चाहिए। प्रकृति ने अपने अस्तित्व को नियमित करने हेतु स्थायी एवं वैज्ञानिक व्यवस्था कर रखी है। एक पशु ४ से २४ वर्ष तक तथा मानव ४० से ६० वर्ष तक औसत रूप से जीवित रहता है। किन्तु विषहरण हेतु वृक्ष प्राय: ६० से २०० वर्ष या इससे भी अधिक जीवित रहते हैं। वस्तुत: मानव को स्वयं की हत्या से बचने हेतु तुरन्त ही वनस्पति संरक्षण प्रारम्भ कर देनी चाहिए और ऐसा करके वह अपने जीवन को सफल बना सकता है। बढ़ते जल, वायु व मिट्टी प्रदूषण, बढ़ते चर्म एवं कैंसर रोग, बढ़ता तापक्रम आदि तो **प्रलय की छाया मात्र हैं।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत: हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि अहिंसा, संयम और तप धर्म है। इससे ही सर्वोच्च कल्याण हो सकता है। जिसका मन सदा धर्म में लीन है, उस मनुष्य को देव भी नमस्कार करते हैं। अन्त में निम्नलिखित तीर्थङ्करीय आभूषण सभी को पहनना चाहिए जो इस प्रकार है-

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे।

मित्ती मे सव्वभूएसु, वेंर मज्झं ण केणवि।।

अर्थात् मैं समस्त जीवों को क्षमा करता हूँ, सब जीव मुझको क्षमा करें, मेरी सभी प्राणियों से मित्रता है, किसी से भी मेरा वैर नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण

कु० निधि जैन*

पर्यावरण वातावरण का पर्याय है। पर्यावरण संरक्षण एवं संतुलन पर हमारा समूचा अस्तित्व निभर करता है। इसलिए हमारे प्राचीन महर्षियों और आचार्यों ने पर्यावरण को दूषित होने से बचाया।

पर्यावरण के मुख्यत: दो प्रकार हैं- आध्यात्मिक पर्यावरण और भौतिक पर्यावरण। आध्यत्मिक पर्यावरण जीव को आत्म संतुष्टि प्रदान करता है तो भौतिक पर्यावरण दैहिक संतुष्टि। हमारी क्रियाओं का प्रभाव भौतिक पर्यावरण पर तथा सोच विचार का प्रभाव आध्यात्मिक पर्यावरण पर पड़ता है। मानव अपने भोजन तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पौधों और जन्तुओं पर आश्रित है। अत: स्पष्ट है कि मनुष्य एवं पर्यावरण एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार भौतिक एवं आध्यात्मिक पर्यावरण दोनों का शुद्ध रहना आवश्यक है क्योंकि जीव सृष्टि तथा वातावरण का घनिष्ट सम्बन्ध है।

पर्यावरण प्रदूषण मानव जीवन के लिये विनाशक है और पर्यावरण संरक्षण मानवीय सृष्टि का विकासक, विज्ञान ने इसे निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक पद्धति में पर्यावरण संरक्षण के जो उपाय हैं उन सभी का तात्विक विश्लेषण किया जाये तो हम पायेंगे कि जैन धर्म के सभी मान्य सिद्धान्तों और उनमें साम्यता है। "धारयते इति धर्म:" के अनुसार पर्यावरण संरक्षण भी हमारा मानवीय धर्म है, जो सभी धार्मिक मान्यताओं में श्रेष्ठ कोटि में आता है।

आज सम्पूर्ण मानव जाति के समक्ष एक प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है कि पर्यावरण प्रदूषण की समस्या जो सुरसा का रूप धारण कर चुकी है जिसका आकार प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है उससे मुक्ति कैसे मिलेगी? यद्यपि मनुष्य स्वत: ही इस समस्या का जनक है क्योंकि उसने ही पर्यावरण चक्र में हस्तक्षेप किया जिससे पर्यावरण प्रदूषण व इससे सम्बन्धित समस्याएं उत्पन्न हुईं। एक प्रकार से यह हस्तक्षेप उस मूर्ख के समान हुआ जो पेड़ की उसी डाली को काट रहा था जिस पर वह बैठा था। मानव की इस मूर्खता के कारण ही प्राकृतिक साधन नष्ट हो रहे हैं तथा

*तृतीय पुरस्कार प्राप्त आलेख (ग्रुप- ए)
द्वारा- श्री यशपाल जैन, कपड़े के थोक व्यापारी, शिवपुरी (म०प्र०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह अपने स्वार्थ पूर्ति के दलदल में खुद फंसता जा रहा है। भगवान् महावीर ने कहा है कि इच्छाएं आकाश की ही तरह अनन्त हैं जिनमें मानव अपनी स्वार्थ पूर्ति की ऐषणा के चक्रव्यूह में फंस गया है। इस चक्रव्यूह को कौन भेद सकता है। विज्ञान अथवा धर्म? विज्ञान इस क्षेत्र में स्वयं को असहाय महसूस कर रहा है वह तो केवल कारण बता सकता है, निदान नहीं। निदान तो केवल धर्म के पास है तो वह कौन सा धर्म है जो हमें पर्यावरण संरक्षण के उपाय बताता है? वह धर्म है जैन धर्म।

तो आइये अवलोकन करें कि जैन धर्म किस प्रकार पर्यावरण संरक्षण हेतु उपयोगी है-:

जैन धर्म में श्रमण के पाँच महाव्रत हैं- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य। ये ही श्रावक के अणुव्रत कहलाते हैं। जो हमारे जीवन में (Code of conduct) का स्थान रखते हैं। हम देखेंगे कि ये अणुव्रत भौतिक एवं आध्यात्मिक पर्यावरण की शुद्धि में कितने सार्थक हैं।

अहिंसा जो कि जैन धर्म का पर्याय है, की महिमा का बखान **आचारांगसूत्र** की इस गाथा में किया गया है-:

"अत्थिं सत्थि परेण परं, नत्थि असत्थं परेणपरं"[१] अर्थात् शस्त्र तो एक से बढ़कर एक हैं पर अहिंसा से बढ़कर कोई शस्त्र नहीं है।

जैन धर्म का यह अचूक एवं अमोघ शस्त्र अहिंसा ही पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं से लड़ सकता है। क्योंकि जैन धर्म ही एक ऐसा धर्म है जिसने यह बताया कि सम्पूर्ण सृष्टि सचेतन है[२] तथा यह संसार सूक्ष्म जीवों से भरा है और इसे कष्ट न पहुँचाने का आग्रह किया। इसलिए जैन धर्म में वनों की कटाई का भी निषेध है जो कि पर्यावरण संरक्षण का महत्वपूर्ण भाग है।

अहिंसा और सत्य एक दूसरे पर आश्रित हैं। मनुष्य को प्रिय, सत्य एवं हिंसा रहित वचन बोलना चाहिए। मृषावादविरमण व्रत के पाँच अतिचारों में किसी भी प्रकार के असत्य आचरण को दोष बताया गया है। यदि सत्य वचन का पालन किया जाये तो राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में फैले वैमनस्य तथा बढ़ते कुप्रभाव को दूर कर भौतिक पर्यावरण को संरक्षित कर सकते हैं।

अचौर्य का अर्थ केवल चोरी न करने से नहीं बल्कि चोर की सहायता करना, राज्य विरुद्ध कार्य करना, लेते-देते तराजू की डंडी चढ़ा देना, रिश्वत लेना, विश्वासघात करना आदि कार्य चोरी के अंतर्गत आते हैं। अचौर्यव्रत के पालन से ही व्यक्ति, समाज तथा देश का आर्थिक पर्यावरण शुद्ध होगा।

'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो' अर्थात् किसी वस्तु पर आसक्ति भाव ही परिग्रह है। परिग्रह का मूल तृष्णा तथा मनुष्य की बढ़ती लोलुपी वृत्ति है। उसी वृत्ति के कारण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह पशुधन जो सीमित तथा राष्ट्र की अमूल्य संपदा हैं, को वह आर्थिक लालच में खोता जा रहा है। इन प्राकृतिक साधनों की बचत का एक मात्र उपाय अपरिग्रह व्रत है जिसमें आवश्यकताएँ सीमित तथा तृष्णा और कामनायें नियंत्रित होती हैं। इसी के द्वारा विविध देश युद्ध की संभावनाओं को समाप्त कर परमाणु विस्फोटों को रोककर पर्यावरण रक्षण कर सकते हैं।

वर्तमान युग में पर्यावरण असंतुलन का सबसे बड़ा कारण देश की बढ़ती जनसंख्या है जो लगभग एक अरब की सीमा पार कर चुकी है। आज सरकार कृत्रिम उपायों द्वारा जनसंख्या नियंत्रण के निर्देश दे रही है जबकि भगवान् महावीर ने इसका प्राकृतिक उपाय ब्रह्मचर्य बताया है।

पर्यावरण संरक्षण हेतु संयम सूत्र की आवश्यकता है यह उतना ही सत्य है जितना सूर्य के होने पर दिन का होना। पदार्थ सीमित हैं अत: उनका उपभोग कम करो, पानी का व्यय कम करो। यह सूत्र धर्म का नहीं पर्यावरण का है। जैन धर्म कहता है कि- खाद्य का संयम करो, वस्त्र का संयम करो, वाहन का संयम करो, यातायात का संयम करो और उपभोग का संयम करो और पर्यावरण विज्ञानी कहेगा- पदार्थ कम है, उपभोक्ता अधिक हैं इसलिए उपभोग को सीमित करो।

कहा जाता है कि संयम ही जीवन है। तब लोग प्रश्न करते हैं कि संयम जीवन कैसे? इस प्रश्न का उत्तर बहुत स्पष्ट है कि किसी भी क्षेत्र में असंयम का परिणाम बहुत ही दु:खद होता है। व्यापारी एवं राजनेताओं में संयम न हो तो भ्रष्टाचार होता है। राजा में इन्द्रिय संयम न हो तो राज्य विनष्ट होता है। इसी प्रकार यदि पर्यावरण को संतुलित करना है तो इस क्षेत्र में भी संयम करो। यदि औद्योगीकरण असंयमित होगा तो प्रदूषण होगा। इसके विपरीत संयमित होने से पर्यावरण पर कुप्रभाव नहीं होगा। यातायात आदि का संयम करने को भी इसी कारण कहा गया है। इस संदर्भ में संयम द्वारा ही पर्यावरण संरक्षित हो सकता है यह रहस्य समझा जा सकता है। संयम पर्यावरण संरक्षण की प्रमुख अपेक्षा है।

इस प्रकार ये पांच अणुव्रत अणुबम जैसे विस्फोटों को शांत कर पर्यावरण संरक्षण का सामर्थ्य रखते हैं। आवश्यकता है इनके प्रयोग की।

अनादि काल से ही जैन धर्म पर्यावरण से सम्बन्धित है प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव से लेकर अंतिम तीर्थंकर महावीर स्वामी तक सभी तीर्थंकरों की माता तीर्थंकर का जीव गर्भ में आने पर जो चौदह स्वप्न देखती हैं वे वनस्पति जगत् से सम्बन्धित हैं। प्रत्येक तीर्थंकर को किसी न किसी वृक्ष के नीचे केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। इसके के बाद वे अशोक वृक्ष के नीचे ही देशना करते हैं, जिसको सुनने देव तथा मनुष्य ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण पशु-पक्षी भी आते हैं। जैन धर्म के समस्त तीर्थ प्राकृतिक स्थलों पर हैं तथा अनेक स्थान जहाँ मुनि भगवन्तों का निर्वाण हुआ वे सभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण हैं। तीर्थंकरों के चिन्ह भी पर्यावरण से ही सम्बन्धित हैं। **पद्मपुराण** में भी वृक्षारोपण को प्रतिष्ठा का विषय कहा गया है-"प्रतिष्ठाते गमिष्यन्ति वृक्षाः समारोहिताः"

इस प्रकार जैन धर्म का अनेक स्थलों पर वनस्पति जगत् तथा प्राणी जगत् से सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। इतना ही नहीं बल्कि दैनिक जीवनोपयोगी कुछ जैन धार्मिक क्रियाएं इस प्रकार हैं कि जिनके द्वारा हम पर्यावरण को दूषित होने से बचा सकते हैं। यथा-

-अशुद्ध जल का सेवन एवं अनावश्यक जल का प्रवाह भी अनंत जलकायिक जीवों की हिंसा है। आज जल प्रदूषण का बहुत बड़ा कारण दूषित पदार्थों को जल में प्रवाहित करना, स्थान-स्थान पर एकत्रित जल और दलदल आदि हैं। जैन शास्त्रों में जल छानकर एवं प्रासुक जल का सेवन प्रत्येक श्रावक का कर्तव्य बताया गया है।[३] जल शुद्धि एवं मितव्ययता से जल प्रदूषण से मुक्ति संभव है।

पर्यावरण में प्रदूषण न आये वह संतुलित रहे इसलिये जैन धर्म में सप्त कुव्यसनों-जुआ, मांस, मदिरा, चोरी, वेश्यागमन, शिकार खेलना और परस्त्रीगमन वर्जित हैं।

प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा हेतु संविधान में दया भाव को कर्तव्य बताया गया है जो नागरिक ही नहीं अपितु शासन पर भी लागू होता है। आज इतने बड़े पैमाने पर अनियंत्रित पशु वध हो रहा है जिससे भौतिक एवं आध्यात्मिक पर्यावरण के [illegible] की संभावना है। अतः इसकी शुद्धि हेतु आवश्यकता है भगवान् महावीर के इस सिद्धान्त की- "सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउं न मरिज्जिउं"[४]

आचारांगसूत्र के प्रथम पांच अध्यायों में, **सूत्रकृतांग** के सप्तम अध्याय में, **दशवैकालिकसूत्र** के चतुर्थ अध्याय में षट्कायिक जीवों का विस्तृत वर्णन मिलता है। इन षट्कायिक जीवों की सुरक्षा के उपाय भगवान् महावीर ने वैज्ञानिक अनुसंधान के पहले ही बता दिये हैं, जिससे षट्कायिक पर्यावरणीय संस्कृति की रक्षा हो सके। उमास्वाति का प्रख्यात सूत्र "परस्परोपग्रहो जीवानाम्"[५] सह अस्तित्व का प्रतिपादन करता है।

परन्तु मानव की संग्रहवृत्ति तथा क्रूरता के कारण आज हम जैन धर्म को भूल गये हैं। हम साल में कुछ विशेष तिथि तथा पर्वों में जैन धर्म के सिद्धान्तों को औपचारिक रूप से याद तो करते हैं लेकिन उन पर अमल नहीं करते। यह तो वही बात हुई कि पार्थिव शरीर की तो निन्दा की जाय और छाया का भी आदर किया जाये। आशय है कि इस चराचर जगत् में हम जो कुछ भी देखते हैं और जो कुछ भी बहुरंगी सौंदर्य स्वरूप हमें पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, नदी, पर्वत और समुद्र के रूप में दृष्टिगोचर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है, जब हम उसके बनाने वाले नहीं हैं तो हमें उसको बिगाड़ने, पशु वध करने अथवा वन संपदा नष्ट करने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है।

पर्यावरण को दूषित होने से बचाने के लिए जैन धर्मोक्त जीवन पद्धति को स्वीकार करने के सिवाय कोई अन्य उपाय नहीं है। जैन धर्म ने पर्यावरण संरक्षण को काफी महत्त्व दिया है। मानव सभ्यता के प्रारम्भ में ही भगवान् ऋषभदेव ने पर्यावरण संरक्षण और जैविक संतुलन बनाये रखने के लिये सशक्त सिद्धान्तों की स्थापना की थी तथा इस पृथ्वी के छोटे से छोटे प्राणी वनस्पति व सूक्ष्म जीवों की रक्षा एवं सम्मान की प्रेरणा दी थी जो कि स्थिर पर्यावरण हेतु अत्यन्त उपयोगी है।

यदि जीवन उज्ज्वल बनाना है तो धर्म करना जरूरी है।
यदि स्वास्थ्य बचाना है तो साधना करना जरूरी है।

यदि पर्यावरण संरक्षण करना है तो जैन धर्म के सिद्धान्तों पर चलना जरूरी है। क्योंकि-

जैन धर्म की शरण में जो होगा जीवन समर्पित।
अहिंसा, अपरिग्रह और संयम से होगा पर्यावरण संरक्षित।

सन्दर्भ

१. **आचारांग,** शीतोष्णीय ६९
२. **दशवैकालिकसूत्र** ४/८
३. **वीरोदय** १९/२९
४. **दशवैकालिकसूत्र** ६/१०
५. **तत्त्वार्थसूत्र** ५/२१

✸

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण

दीपिका गांधी*

पर्यावरण या समग्र प्रकृति एक-दूसरे का पर्याय है। केवल नदी, जल, जंगल, पहाड़, पशु-पक्षी और हवा ही पर्यावरण नहीं हैं। हमारे सामाजिक - आर्थिक सरोकार और हमारी सांस्कृतिक - राजनैतिक एवं समसामयिक परिस्थितियाँ भी पर्यावरण की ही फलक हैं।

श्रमण-परम्परा अहिंसक प्रयोगों के उदाहरणों से भरी पड़ी है। तीर्थंकरों ने पर्यावरण के संरक्षण से अपनी साधना प्रारम्भ की है। ऋषभदेव ने कृषि एवं वन सम्पदा को सुरक्षित रखने के लिए लोगों को सही ढंग से जीने की कला सिखायी। नेमिनाथ ने पशु-पक्षियों के प्राणों के समक्ष मनुष्य की विलासिता को निरर्थक सिद्ध किया। पार्श्वनाथ ने धर्म और साधना के क्षेत्र में हिंसक अनुष्ठानों की अनुमति नहीं दी। अग्नि को व्यर्थ में जलाना और पानी को निरर्थक बहा देना भी हिंसा के सूक्ष्म द्वार हैं। षट्काय के जीवों की रक्षा में ही धर्म की घोषणा करके महावीर ने पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा, वनस्पति, कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी एवं मानव इन सबको सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है। तभी वे कह सके -

"मित्ती मे सव्वभूयेसु, वेरं मज्झं ण केणइ"

मेरी सब प्राणियों से मित्रता है, मेरा किसी से बैर नहीं है। इस सूत्र को जीवन में उतारे बिना संयम नहीं हो सकता, धर्म की साधना नहीं हो सकती। पर्यावरण की सुरक्षा नहीं हो सकती।

जैन जीवन-शैली में पर्यावरण-सुरक्षा आरम्भ से ही ऐसी घुली-मिली रही है कि उसकी ओर अलग से विचार किए जाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। आज जब गिरते जीवन मूल्यों के कारण वह जीवन शैली ही प्रदूषित हो गई है, पर्यावरण और उससे जुड़े प्रश्न अधिक प्रासंगिक हो गए हैं।

आचारांगसूत्र को पर्यावरण के दृष्टिकोण से देखें तो वहां इस विषय की सामग्री स्थान-स्थान पर बिखरी दिखाई देती है। यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगा कि पर्यावरण के सभी पहलुओं का महत्त्व समझ उसे जीवनोपयोगी बनाए

*ग्रूप बी; पत्र व्यवहार का पता - श्री सुरेन्द्र कुमार गांधी, लखन कोठारी, दर्जी मोहल्ला, अजमेर (राज०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रखने का सबसे प्राचीन, समन्वित, समग्र और वैज्ञानिक प्रयत्न संभवत: जैनों ने ही **आचारांगसूत्र** के माध्यम से किया।

वनस्पति की सुरक्षा की बात न्यूनाधिक रूप से सभी धर्म करते हैं, पर जैन धर्म में तीर्थंकरों के सम्पूर्ण चिन्तन की धुरी वनस्पति संरक्षण है। बारहवीं सदी के **भरतबाहुबलिमहाकाव्य** में वृक्षवर्णनों के साथ वन - संरक्षण का बृहद् वर्णन मिलता है। **आदिपुराण** में वन-संरक्षण एवं सघन वनों का जो वर्णन किया गया है उसे अरण्य संस्कृति कहा जाता है। अरण्य संस्कृति के अनुसार सम्पूर्ण विश्व एक वृक्ष है जिसे लोक कहा है। लोक के एक भाग पर मानव रहता है जो जम्बूद्वीप के नाम से जाना जाता है। यूं तो मानव प्रारम्भ से ही कल्पतरु वनस्पति पर निर्भर रहता आया है।

तीर्थंकर भगवन्तों के अनुसार एकेन्द्रिय जीव होने के कारण वनस्पति जीवन से परिपूर्ण है। किसी भी जीव को नहीं मारना वनस्पति को भी नष्ट न करने का संदेश देता है। **आचारांग** में कहा भी है - "सव्वे पाणा सव्वे भूता, सव्वे जीवा सव्वे सत्ता ण हंतव्वा" अर्थात् कोई भी प्राणी, कोई भी जन्तु, कोई भी जीव, कोई भी प्राणवान मारा नहीं जाना चाहिए। क्योंकि इनको नष्ट करने से सभी के कष्टों में वृद्धि होगी। **आचारांग** में कहा है -

पाणा पाणे किलेसंति बहु दुक्खा हु जंतवो।

जीव जीव को सताता है, वास्तव में इसी कारण हर जीव कष्ट में है। महावीर ने अपने विहार के समय हर प्राणी का पूरा-पूरा ध्यान रखा, जैसा कि -

पुढ़विं च आउकायं च तेउकायं च वायुकायं च।
पणगाइं बीयहरियाइं तसकायं च सव्वसो णच्चा।।

अर्थात् पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, शैवाल बीज और हरी वनस्पति तथा त्रसकाय जीव हैं, ऐसा जानकार वे विहार करते थे। वनस्पति को सभी तीर्थंकरों ने जीव माना है। जैन जगत् के श्रावक नियमों के अनुसार दैनिक जीवन में इनका उपयोग वर्जित है। श्रावक के १४ नियमों में कहा है -

सतित्तदव्व विग्गई, पन्नी-तंबुल-वत्थ कुसुमेसु।
वाहण-समण-विलेसण, बंभ दिसि नाहण भत्तेसु।।

अर्थात् फूलों के उपयोग में भी मितव्ययी होना चाहिए। यहाँ तक कि सूखे मेवों, खाद्यान बीजों आदि का उपयोग यथासंभव हमें कम से कम करना चाहिए।

आगमों में वनस्पति में जीव होने का पूर्ण प्रमाण मिलता है। यहाँ तक कि इनमें दूसरी समस्त क्रियाओं की अनुभूति भी मानव की तरह ही होती है। **आचारांग** में लिखा है -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"से बेमि - इमं पि जातिधम्मयं, एयं पि जातिधम्मयं, मनुष्य भी जन्म लेता है और वनस्पति भी जन्म लेती है।"

इमं पि वुड्ढिधम्मयं, एयं पि वुड्ढिधम्मयं, यह भी वृद्धिधर्मा होता है और वनस्पति भी।

इमं पि चित्तमंतयं, एयं पि चित्तमंतयं, यह भी चेतना वाला होता है और वनस्पति भी।

इमं पि छिण्णं मिलाति, एयं छिण्णं मिलाति; मनुष्य भी कटा हुआ उदास होता है और वनस्पति भी काटने पर सूख जाने से निर्जीव हो जाती है।

इमं पि आहारगं, एयं पि आहारगं; मनुष्य भी आहार करने वाला होता है और वनस्पति भी।

इमं पि अणितियं, एयं पि अणितियं, यह भी नाशवान होता है और वनस्पति भी नाशवान होती है।

इमं पि असासयं, एयं पि असासयं - मनुष्य भी हमेशा रहने वाला नहीं और वनस्पति भी नाशवान होती है।

इमं पि चयोवचइयं, एयं पि चयोवचइयं - नाशवान मनुष्य भी बढ़ने वाला व क्षय वाला होता है और वनस्पति भी बढ़ने वाली व नाशवान होती है।

इमं पि विप्परिणामधम्मयं, एयं पि विप्परिणामधम्मयं - मनुष्य भी परिवर्तन स्वभाव वाला होता है और वनस्पति भी परिवर्तन स्वभाव वाली होती है।

वनस्पति के उपयोग का निषेध करते हुए तीर्थंकरों ने कहा है कि प्रचार-प्रसार और पूजा-अर्चना में भी इनका उपयोग करना पाप है। कहा है - एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णिरए। इच्चत्थं गढिए लोए जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं बणस्सइकम्मसमारंभेणं, वणस्सतिसत्थंसमारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसई। यह आसक्ति है, यह मोह है, यह भार है और यही नरक है। इन सभी चेतावनियों के उपरांत भी यदि मानव वनस्पति को नष्ट करता है तो सबका अहित करता है। श्रावक के लिए कर्मादानों का सेवन करना निषिद्ध बताया है। प्रथम, द्वितीय तथा तेरहवें नियम वनस्पति संरक्षण पर जोर देते हैं। इनमें से प्रथम "इंगाल कम्मे" है, अर्थात् वनस्पति से कोयला निर्माण का कार्य करना। कोयले के व्यवसाय में असंख्य वृक्ष काटे जाते हैं ऐसा करना उचित नहीं, क्योंकि ये वृक्ष ही वायुमण्डल में विभिन्न स्रोतों से प्रवेश करने वाली जहरीली गैसों का अवशोषण करते हैं और जीव को जीवित रखते हैं। द्वितीय कर्मादान "वणकम्मे" है और तेरहवां "दवग्गिदावणियाकम्मे" जो वन व्यवसाय और वन दहन के बारे में बताता है। इनका व्यापार करना पाप है। **आचारांग सूत्र** में कहा है कि बुद्धिमान मानव वनस्पति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को भी नष्ट नहीं करता है- मेहावी णेव सयं वणस्सतिसत्थं समारंभेज्जा, णेवऽण्णेहिं वणस्सतिसत्थं समारंभावेज्जा, णेवऽण्णे वणस्सतिसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा।

पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री ने अपनी पुस्तक **जैनधर्म** पुस्तक में कतिपय वृक्षों के उपयोग का निषेध किया है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त यहां तक कहते हैं कि मानव सभी जीव खाने लगा है; अब तो निर्जीव वस्तुएँ खानी ही शेष रही हैं -

विहंगमों केवल पतंग, जलचरों नाव ही।
चौपायों में भोजनार्थ, केवल चारपाई बची रही।।

सभी सजीव वस्तुओं को खाने के बाद उड़ने वालों में पतंग, जलजीवों में नाव और चौपाये जानवरों में केवल चारपाई, यानी खाट ही खाना शेष है।

वनस्पति के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष अनेक लाभ हैं। पृथ्वी पर जीवन का आधार मात्र वनस्पति ही है। **आदिपुराण** में कहा गया है कि वन, संत एवं मुनिराज कल्याणकारक हैं। ये तीनों समस्त कष्ट दूर कर देते हैं। यहाँ तक कि इनकी छाया मात्र में बैठने भर से थकान दूर हो जाती है। वनस्पति की विभिन्नता एवं सघनता के फलस्वरूप विशेष पारिस्थिति तत्वों का निर्माण होता है। वनस्पति हार्दिक प्रसन्नता का चिह्न है। इसकी प्रसन्नता एवं शान्ति से उतना ही घनिष्ट सम्बन्ध है जितना कि दूल्हा-दुल्हन के बीच पाया जाता है।

मानव कल्याण एवं सृष्टि के सुसंचालन हेतु वनस्पति का संरक्षण अति आवश्यक है। अकाट्य वैज्ञानिक प्रमाण प्रस्तुत कर स्वयं जैन शास्त्रों ने इनका संरक्षण आवश्यक बताया है। **भगवतीसूत्र** में कहा गया है - "पुढवी काइया सव्वे समवेदणा समकिरिया" अर्थात् पृथ्वी की भाँति सभी कायों में समान संवेदनशीलता पाई जाती है। अणुसमयं अविरहिए अहारट्ठे समुपज्जइ अर्थात वनस्पति अन्य की भांति बिना किसी रुकावट के अपना भोजन पाती हैं। ये भाव वनस्पति में जीवन के तथ्य को प्रमाणित करते हैं एवं इसकी रक्षा हेतु अहिंसा के मार्ग की आवश्यकता को प्रतिपादित करते हैं। **आचारांगसूत्र** में मानव एवं अन्य जीवों के सह-अस्तित्व की वकालत करते हुए सबके जीवन के अस्तिव को बनाये रखने हेतु जोर दिया गया है। **भविष्यपुराण** में वृक्ष को पुत्र से भी अधिक महत्वपूर्ण माना है।

पुत्र मृत्यु के समय माँ-बाप की सेवा करे या न भी करे, परन्तु वृक्ष हमारी जीवन पर्यन्त सेवा करता है।

जैन धर्म के दार्शनिक आधार सम्पूर्ण लोकरचना में जीव तत्व की प्रमुख भूमिका है। उसी के उपग्रह से संसार का सामूहिक जीवन स्थिर है। उसी के निमित्त से लोकरचना का सम्पूर्ण पर्यावरण जीवंत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म का नारा है - जीओ और जीने दो।

पर्यावरण को अपने ढंग से जीने देना, उसमें कम से कम हस्तक्षेप करना पर्यावरण-सुरक्षा की स्वाभाविक गारंटी है। मितव्ययता जैन धर्म के व्यावहारिक पहलू की रीढ़ है। कम से कम जरूरत हो उसी के अनुरूप खनिज, हवा, पानी, ऊर्जा, वनस्पतियाँ, त्रस जीवों के शरीर और उनकी सेवाएं उपभोग में ली जाएँ। जिस आचरण से किसी जीव का सर्वथा प्राणहरण हो जाए, उससे बचा जाए।

मनुष्य सम्पदा, जल समूह एवं वायु मण्डल के समन्वित आवरण का नाम है - पर्यावरण। वस्तुतः सम्पूर्ण प्रकृति और मनुष्य के उसके साथ सम्बन्धों में मधुरता का नाम पर्यावरण - संरक्षण है। समता, अहिंसा, सन्तोष, अपरिग्रहवृत्ति, शाकाहार का व्यवहार आदि जीवन-मूल्यों के द्वारा ही स्थाई रूप से पर्यावरण को शुद्ध रखा जा सकता है। ये जीवन-मूल्य जैन धर्म के आधार हैं।

धर्म के स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए जैन साहित्य में कहा है -

धम्मो वत्थुसहावो, खमादिभावो य दसविहो धम्मो।
रयणतयं च धम्मो, जीवाणं रक्खणं धम्मो।।

वस्तु का स्वभाव धर्म है, क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि आत्मा के दस भाव धर्म हैं। रत्नत्रय धर्म है तथा जीवों का रक्षण करना धर्म है। पर्यावरण की शुद्धता के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार के धर्म को अंगीकार कर उसमें जीने की बड़ी सार्थकता है।

भगवान् महावीर ने लोभविजय, बुद्ध ने तृष्णाक्षय, कबीर ने संतोषधन आदि पर विशेष जोर देकर मनुष्य को उपभोग से उपयोग की ओर लौटने की बात कही है। यही प्रदूषण की महाव्याधि से मानवता को स्वस्थ कर सकती है। कबीर की यह वाणी सुख, शान्ति और समृद्धि एक साथ प्रदान करने वाली है -

गोधन गजधन बाजिधन और रतनधन खान।
जब आवे सन्तोषधन, सब धन धूलि समान।।

वनविनाश के दुष्परिणाम - वनस्पति ह्रास के कारण प्रलय तक हो सकता है। औद्योगिक और गहन नगरीकरण के साथ वन विनाश बड़ी तेजी से होता जा रहा है। औद्योगीकरण से कार्बन-डाई-आक्साइड एवं विषैली गैसों की वायु मण्डल में मात्रा निरन्तर बढ़ती और प्राणवायु ऑक्सीजन की मात्रा घटती ही जा रही है। लगता है मानव अपनी कष्टमय मौत को निमंत्रण देते हुए अपने अन्त की ओर अग्रसर हो रहा है। इन सभी तथ्यों का संकेत अब प्रकृति भी देने लगी है।

पर्यावरण को प्रदूषित करने में मानव की अहम् भूमिका रही है। अपनी विलासितापूर्ण जीवन जीने की ललक में वह प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चला आया और आज पर्यावरण प्रदूषण की भयानक स्थिति हमारे सामने उपस्थित हुई है अतः किसी ने कहा भी है कि-

करता है पग पग पर गलतियां मानव।
इसलिए आया है सामने प्रदूषण का दानव।।

मनुष्य कई प्रकार से पर्यावरण को प्रदूषित करता है जिसमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

१) पर्वतों के सीने भेद कर और वनों को रौंद कर सड़कें बनाई गई हैं। इन पर चलने वाले वाहनों से निकला धुआँ वायुमण्डल की वायु के साथ घुल मिल उसे प्रदूषित करता है। इस धुएँ में कार्बन डाई ऑक्साईड व कार्बन मोनो आक्साईड गैसों की बहुलता होती है जो जहरीली होती हैं।

२) भारत एक विकासशील देश है। यहाँ हजारों की संख्या में कल-कारखाने व फैक्ट्रियां हैं जहां प्रतिदिन लाखों टन अपशिष्ट पदार्थ बाहर निकलता है और यह नदियों में बहाया जाता है। इन पदार्थों में कुछ कण ऐसे होते हैं जो पानी पर एक ठोस परत बना देते हैं, जिससे सूर्य का प्रकाश पानी में प्रवेश नहीं कर पाता और ऑक्सीजन पानी में नहीं घुल पाती और पानी पीने योग्य नहीं रहता है। इस दूषित जल में रहने वाले जीव, मछलियां आदि ऑक्सीजन की कमी के कारण मर जाती हैं।

३) मनुष्य निरन्तर वन काट रहा है और पशुओं का वध भी जारी है जिससे प्रकृति का संतुलन बिगड़ता चला जा रहा है। पेड़ हमें भोजन, वस्त्र, प्राणदायक वायु व अन्य कई वस्तुएँ प्रदान करते हैं। इनकी निरन्तर कटाई से आज सभी वस्तुओं की कमी हो रही है। पेड़ वर्षा लाने में भी सहायक होते हैं। उनकी निरन्तर कटाई से सभी जगह वर्षा का असमान वितरण हो रहा है। जिससे कहीं अतिवृष्टि हो रही है तो कहीं अनावृष्टि।

४) आज विज्ञान की प्रगति के कारण नई-नई वस्तुओं का निर्माण हो रहा है। इन वस्तुओं के उपयोग हेतु जनता को ललायित करने के लिए उत्पादकों द्वारा कई प्रयास किये जा रहे हैं जिनमें वस्तुओं के विज्ञापन व विशेष कार्यों के प्रचार हेतु लाउडस्पीकरों का उपयोग किया जाता है जिससे बहुत शोरगुल होता है। इसके अतिरिक्त आज की पीढ़ी के लोग अत्यन्त तेज स्वरों वाले संगीत को सुनना पसन्द करते हैं जैसे - पॉप म्युजिक इत्यादि। अत्यधिक शोर मानव के श्रवण तन्त्र को प्रभावित कर उनकी सुनने की शक्ति को कम कर देते हैं। इसी प्रकार प्रतिदिन कल कारखानों और मशीनों के शोर का सामना करने वाले श्रमिक कुछ ही वर्षों में बहरे हो जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदूषण के परिणाम :- १) दूषित वायु में श्वास लेने पर इसका सीधा प्रभाव हमारे श्वसन तंत्र पर पड़ता है। कल-कारखानों व वाहनों से निकलने वाले धुएँ में उपस्थित हानिकारक गैसों - सल्फर डाई ऑक्साईड, अमोनिया आदि के कारण आँखों में जलन, जुकाम, दमा इत्यादि रोग हो जाते हैं। २) जल प्रदूषण से प्रति वर्ष संसार में अढाई करोड़ बच्चे पांच वर्ष की उम्र तक पहुँचने से पूर्व ही काल के ग्रास बन जाते हैं। साथ ही दूषित जल के उपयोग से हम डायरिया, हैजा, मोतीझरा, पेचिश आदि रोगों के शिकार हो जाते हैं। ३) ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव मनुष्य के मस्तिष्क पर पड़ता है। ध्वनि प्रदूषण से कई प्रकार के मानसिक व अन्य रोग हो जाते हैं, जैसे- चिड़चिड़ापन, बहरापन, सिरदर्द, उच्चरक्तचाप, अनिद्रा आदि।

जैन धर्म और पर्यावरण - जैन धर्म और पर्यावरण में चोली-दामन का सम्बन्ध है। जैन धर्म वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर खरा उतरने वाला धर्म है। जैन धर्म के श्रमणाचार और श्रावकाचार का हम गहराई से अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि इन दोनों में कितना अटूट सम्बन्ध है। प्रकृति ने हमें कई चीजें दी हैं - जैसे पेड़, पौधे, नदियां, घाटियां, ऊँचे पर्वत, जीव-जन्तु इत्यादि। किन्तु इनमें पेड़-पौधों और जीव-जन्तु की महत्ता कुछ अलग ही है। ये प्रकृति के ऐसे घटक हैं, जो प्रकृति का संतुलन बनाये रखने और मनुष्य की आवश्यकता पूर्ति में सहयोग देते हैं। चार तीर्थंकरों के प्रतीक चिह्न - सिंह, बैल, सूअर और सर्प भी पर्यावरण प्रदूषण को रोकने में सहयोग देते हैं। इसी प्रकार प्राणवायु के जनक वृक्षों का सम्बन्ध भी इस धर्म से जुड़ा हुआ है। प्रत्येक तीर्थंकर के जन्म, तप, दीक्षा, केवलज्ञान आदि कल्याणक बड़े-बड़े अशोक, जामुन, शाल्मली आदि पेड़ों के नीचे ही हुए हैं, जिससे ये वृक्ष हमारे पूजनीय हो गये हैं। प्रकृति के इस रहस्य और महापुरुषों की इस देन को मनुष्य ने भुला दिया है। जहाँ एक पेड़ काटना भी महापाप माना जाता हैं वहां मनुष्य बेरहमी से निरन्तर हरे-भरे वन काट रहा है और महा हिंसा का भागी बन रहा है। **अंतगडदसाओ** और अन्य शास्त्रों में जगह-जगह स्थविरों का वर्णन आता है कि वे अपनी शिष्य मंडली के साथ गाँव के बाहर वनखंडों से घिरे चैत्य में आकर विराजते हैं जैसे कि **अंतगडदसाओ** के प्रथम अध्ययन में ही - "अज्ज सुहम्मे थेरे तेणामेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता अज्जासुहम्मे थेरे तिक्खत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ। करेत्ता वंदति नमंसति, वंदिता नमंसित्ता अज्जसुम्मस्सं थेरस्स----" ऐसा वर्णन आता है। इसी प्रकार जैन धर्म के तीर्थ स्थल भी हरे-भरे वन खंडों से घिरे हुए हैं। सम्मेतशिखरजी की पावन निर्वाण भूमि, गुजरात का शत्रुजंय तीर्थ आदि पर्वतमालाओं से घिरे हुए शुद्ध पर्यावरण से युक्त हैं। जैन श्रमण पहले घने वनों या गुफाओं को ही अपनी तपस्थली बनाते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थे। सर्वांग दृष्टि से यदि हम सोचें तो जैन धर्म पर्यावरण का संरक्षक ही नहीं, उसकी सुरक्षा का कवच भी है।

आत्मा के स्वभाव को जानने के लिए क्षमा, मृदुता, सरलता, पवित्रता, सत्य, संयम, तप, त्याग, निस्पृही वृत्ति, ब्रह्मचर्य इन दस प्रकार के आत्मिक गुणों को जानने को धर्म कहा गया है। इन गुणों की साधना से आत्मा और जगत् के वास्तविक स्वभाव के दर्शन हो सकते हैं। इसी स्वभाव रूपी चादर के सम्बन्ध में संत कबीर ने कहा है -

यहि चादर सुर-नर मुनि ओढ़ी
ओढ़ के मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी
ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।।

जब पर्यावरण स्वस्थ होगा तभी प्राणियों का जीवन स्वस्थ होगा। स्वस्थ जीवन ही धर्म-साधना का आधार है। कबीर ने जिसे "जतन" कहा है उसे जैनदर्शन के चिन्तकों ने हजारों वर्ष पूर्व यत्नाचार धर्म के रूप में प्रतिपादित कर दिया था। उनका उद्घोष था कि संसार के चारों ओर इतने प्राणी, जीवन्त प्रकृति भरी हुई है कि मनुष्य, जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करते समय उनके घात-प्रतिघात से बच नहीं सकता। किन्तु वह इतना प्रयत्न (जतन) तो कर ही सकता है कि उसके जीवनयापन के कार्यों में कम से कम प्राणियों का घात हो। मनुष्य की इस अहिंसक भावना से ही करोड़ों प्राणियों को जीवनदान मिल जाता है। जैसा कि कहा है -

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सये।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधई।। **दशवैकालिक**, ४/३१

पर्यावरण का संरक्षण - पर्यावरण प्रदूषण की समस्या जो निरन्तर सुरसा के मुख की तरह विकराल होती जा रही है, इसके निवारण हेतु हमें जैन आचार संहिता का मूलाधार अहिंसा को अपनाना होगा। जैनों की अहिंसा मनुष्य तक ही सीमित नहीं है अपितु उसका प्रसार सभी चराचर जीवों तक व्याप्त है। वनस्पति में तो विज्ञान जीव मानता ही है, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु भी जीवों की परिधि में आते हैं। इसलिए अकारण किसी भी जीव को नहीं सताया जाय। जीवों की आवश्यक हिंसा उतनी ही की जाए, जितनी जीवनयापन के लिए निहायत जरूरी हो। जैसा कि कहा भी है -

सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउँ न मरिज्जिउं।
तम्हा पाणिवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंति णं।। **दशवैकालिक**, ६/१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"अर्थात् सब प्राणी जीने की इच्छा करते हैं कोई मरना नहीं चाहता" इसलिए निर्ग्रन्थ प्राणिवध का घोर परिहार करते हैं। इसके साथ ही "परस्परोपग्रहोजीवानां" की मैत्री भावना से सोचें कि जैसा हमारा जीवन अन्य जीवों पर आश्रित हैं वैसे ही अन्य जीव हमारे पर आश्रित हैं।

सूई जहा ससुत्ता, न नस्सइ, कयवरम्मि पडिआ वि।
जीवो वि तह ससुत्तो, न नस्सइ गओ वि संसारे।

धागा सूई का स्वभाव है। उसके बिना वह जोड़ने का काम नहीं कर सकती है। बिना धागे के यदि सूई लावारिस पड़ी हो तो वह लोगों के पैरों में चुभ सकती है। उससे घातक घाव हो सकता है। आज की सूई सारी वैज्ञानिक प्रगति है। तरह-तरह की मशीनें हैं। दोनों ही लोहा हैं। यदि यन्त्रों व वैज्ञानिक उपकरणों के साथ मनुष्य का मर्यादित व संयमित मस्तिष्क न हो तो वे प्राणि जगत् का विनाश कर डालेगें, प्रकृति को उजाड़ देंगे, पर्यावरण को दूषित कर देंगे और यदि मानव संयम का धागा अपनी विकास रूपी सूई के साथ पिरो दे तो ये विनाश की लीला बच सकती है और तभी यह सही अर्थों में कहा जा सकता है - "क्षेत्र सर्वप्रजानां प्रभवतु" सारी प्रजा का कल्याण हो। संसार के सभी प्राणी सुखी हों - "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।" प्राचीन आचार्यों ने कहा है - "धर्मो रक्षतिं रक्षितः" जब हम धर्म की रक्षा करते हैं तब धर्म हमारी रक्षा करता है। इस प्रकार हमें उदार वृत्ति युक्त भी बनना चाहिए। जितना हम प्रकृतिक से लेते हैं, उतना हमें प्रतिदान स्वरूप लौटाना भी चाहिए। हमें अपनी जीवन शैली ऐसी बनानी चाहिए, जिससे हम स्वयं भी सुख से जीयें और दूसरों को भी जीने दें। इस प्रकार पर्यावरण संरक्षण में अहिंसा सहायक ही नहीं वरदान स्वरूप सिद्ध होगी। जैसा कि ऊपर कहा गया कि पर्यावरण और जैन धर्म का चोली दामन का सम्बन्ध है। इसलिए प्रकृति के संरक्षण हेतु हम श्रावक के बारह व्रतों को भी धारण करें और इनके गूढ़ रहस्यों को समझें तो किसी हद तक हम संरक्षण में हाथ बटा सकेंगे और महान् हिंसा से भी बच सकेंगे। इससे एक ओर जैन धर्म का प्रसार तो होगा ही, दूसरी ओर हम मूक प्राणियों को जीवन दान भी दे सकेंगे।

उपसंहार - पर्यावरण प्रदूषण की वर्तमान भयावह स्थिति को देखकर पर्यावरणविद् अत्यन्त चिंतित हुए। अतः ५ जून १९७२ को स्काटहोम में संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्त्वावधान में एक बैठक आयोजित की गई, जिसमें भारत सहित १५१ देशों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए व प्रदूषण की रोकथाम के उपायों पर अपने विचार प्रकट किए, साथ में ५ जून को प्रतिवर्ष पर्यावरण दिवस के रूप में मनाये जाने की घोषणा भी की गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिए सरकार भी प्रयासरत है व ऐसे कई कानून बनाये हैं जिसमें निरीह प्राणियों की हत्या करने व प्राकृतिक सम्पदा को नुकसान पहुँचाने वालों को कठोर दण्ड दिये जाने की भी व्यवस्था है। अब अगर आवश्यकता है तो इन नियमों की कठोरता पूर्वक पालन किये जाने की। पर्यावरण संरक्षण की जिम्मेदारी केवल सरकार को सौंप देने से काम नहीं चलेगा। इसके लिए हमें स्वयं भी प्रयास करने पड़ेंगे व लोगों को जागृत करना होगा। इस कार्य को वैज्ञानिक, शिक्षक व बुद्धिजीवी लोग आसानी से कर सकते हैं। प्रदूषण को रोकने के लिए हमें जीवों की हिंसा का भी पूर्णतया त्याग करना होगा। जब हम किसी प्राणी को जीवन नहीं दे सकते तो उनका जीवन लेने का भी अधिकार नहीं है। जैन धर्म के इस सूत्र कि हमारी सभी से मैत्री है, किसी से भी वैर नहीं है - जब हम अपनायेंगे तभी जगत् में पर्यावरण संतुलन कायम रखने में मनुष्य की सही भूमिका मानी जायेगी।

✸

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म एवं पर्यावरण संरक्षण

डॉ० श्याम सुन्दर शर्मा*

पर्यावरण का शब्दकोषीय अर्थ है - आस-पास या पास-पड़ोस अर्थात् किसी स्थान विशेष में मनुष्य के आस-पास भौतिक वस्तुओं (स्थल, जल, मृदा, वायु - ये रासायनिक तत्व हैं) का आवरण, जिसके द्वारा मनुष्य घिरा होता है, को पर्यावरण कहते हैं। भूगोल के विद्वान् पार्क ने पर्यावरण का अर्थ उन दशाओं के योग से लिया है जो मनुष्य को निश्चित समय में निश्चित स्थान पर आवृत्त करती हैं। पर्यावरण अविभाज्य समष्टि है तथा भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक (इसमें सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक सभी तत्वों का समावेश है) तन्त्रों से इसकी रचना होती है। सांस्कृतिक तत्व मुख्य रूप से मानव निर्मित होते हैं तथा सांस्कृतिक पर्यावरण की रचना करते हैं।

मानव, समाज की मूल इकाई है। पर्यावरण तथा समाज एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बंधित हैं। दूसरे शब्दों में ये परस्परावलंबी हैं। पर्यावरण की समस्या के निदान की उपयोगिता का निर्णय इस आधार पर लिया जाता है कि पर्यावरण सुधार एवं संरक्षण कार्यक्रम का पूरे समाज पर कैसा और कितना प्रभाव पड़ता है। अब समाज पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति संवेदनशील एवं सचेत हो चुका है। पर्यावरण के प्रति जन समुदाय की अभिरुचि भावनात्मक शिखर तक पहुँच चुकी है; लेकिन प्रश्न यह है कि वे कौन से साधन हैं जिनके द्वारा पर्यावरण के प्रति इस भावनात्मक जागरूकता को कार्य रूप दिया जा सकता है।

विज्ञान पर्यावरण संरक्षण नहीं कर सकता क्योंकि संरक्षण के स्थान पर वह प्रदूषण देता है और पर्यावरण संरक्षण संभव है तो केवल भारत के धार्मिक साहित्य के अध्ययन, उसके मनन और धर्म साधनाओं में बताये गये सिद्धान्तों को व्यवहारिक रूप देने से।

हमारे मनीषियों ने हजारों वर्ष पूर्व मानव जीवन के कल्याणार्थ पर्यावरण का महत्व और उसकी रक्षा, प्रकृति से सानिध्य, संवेदनशीलता, रोगों के उपचार तथा स्वास्थ्य संबंधी अनेक उपयोगी तत्व निकाले थे। वैदिक कालीन समाज में न केवल पर्यावरण के सभी पहलुओं पर चौकन्नी दृष्टि थी; वरन् उसकी रक्षा और महत्व को

*ग्रूप बी; पत्र व्यवहार का पता - २/१३८, विवेकानन्द कालोनी, डी०जे० कोठी के सामने, शिवपुरी - ४७३५५१ (म०प्र०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी स्पष्ट किया गया था। इन लोगों की दृष्टि पर्यावरण प्रदूषण की ओर थी। अत: उन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में पर्यावरण की रक्षा की और समाज का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। वे भूमि को ईश्वर का रूप ही मानते थे जो पर्यावरण की रक्षा एवं पूजा का एक अविभाज्य अंग रहा।

वेदों में वायु की शुद्धि के साथ ही जल प्रदूषण एवं उसके निदान पर भी विशेष बल दिया गया है। ध्वनि प्रदूषण के अंतर्गत वेदों में कहा गया है कि वार्ता करते समय आपस में मधुर एवं धीमे बोलें। खाद्य प्रदूषण के बचाव को भी वेदों ने महत्वपूर्ण स्थान दिया है। मिट्टी एवं वनस्पतियों में प्रदूषण की रोकथाम का वर्णन भी वेदों में मिलता है।

वैदिक काल में पर्यावरण संरक्षण को इतना महत्वपूर्ण माना गया है; इससे यह स्पष्ट है कि जैन धर्म जो वैदिक धर्म से भी प्राचीन है, उसमें वर्णित सिद्धान्तों और उपासना पद्धति में जो पर्यावरण संरक्षण और जैविक संतुलन के सिद्धान्तों की स्थापना की गई है वह वर्तमान परिवेश के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। मानव सभ्यता के प्रारंभ में ही भगवान् ऋषभदेव ने पर्यावरण संरक्षण बनाये रखने के लिये अनेक सबल सिद्धान्तों की स्थापना की थी। उन्होंने पृथ्वी के छोटे से छोटे प्राणी, वनस्पति एवं सूक्ष्म जीवों की रक्षा के लिये, जो पर्यावरण के लिये आवश्यक हैं, समाज को प्रेरित किया। जैन धर्म में जिन षड्द्रव्यों की अवधारणा है उनका संरक्षण और संवर्द्धन भी पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण घटक है। जैन धर्म में प्रचलित पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं वनस्पतियों में जीव की अवधारणा से हमें ज्ञात होता है कि वर्तमान युग में मानव ने जिन वस्तुओं को अपने उपभोग के लिये मान लिया है उनमें भी सुख-दुख की अनुभूति होती है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी यह सिद्ध हो चुका है।

ऊपर वैदिक ऋचाओं के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण पर जो प्रकाश डाला गया है वह जैन धर्म की उपासना पद्धति एवं सिद्धान्तों का पर्याय ही प्रतीत होता है; क्योंकि प्रकृति की पूजा प्रारंभ से की जाती रही है और उसी ने पर्यावरण को संतुलित रखने में हमारे महापुरुषों को सहयोग प्रदान किया है। अहिंसा, जो जैन धर्म की मूलभित्ति है, का जितना सूक्ष्म विवेचन जैन परंपरा में मिलता है उतना शायद ही किसी अन्य परंपरा में हो। जैनाचार्यों की अहिंसक दृष्टि भारतीय संस्कृति के लिये गौरव की बात है इसके अनुसार हमारा यह कर्तव्य है कि हम मन से भी किसी के घात की बात न सोचें। अहिंसा का ऐसा उदात्त सिद्धान्त पर्यावरण संरक्षण क्या विश्व शांति का प्रमुख आधार है।

जैनत्व आदर्श जीवन का पथ प्रदर्शक है जिसमें धर्म, चित्त की शुद्धता, आत्मिक सुख-शांति और एकांतिक तथा आत्यांतिक चैन की प्राप्ति होती है। अहिंसा परस्पर सहस्तित्व की भावना को बल देती है। यह भावना पर्यावरण संरक्षण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में सहायक ही नहीं, अपितु आवश्यक भी है। इस तत्व को वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है कि वृक्ष कार्बनडाई आक्साइड को, जो मनुष्य द्वारा उच्छवासित होती है, उसे ग्रहण करते हैं तथा उनके द्वारा उच्छवासित आक्सीजन को मनुष्य ग्रहण करता है जो मानव का जीवन आधार है। जैन धर्म ग्रन्थों में वन सम्पदा के महत्व को प्रतिपादित किया गया है जो पर्यावरण संरक्षण का प्रतीक है। इससे धर्मलाभ के साथ-साथ स्वास्थ्य लाभ भी होता है।

जैन धर्म में अपरिग्रह का जो आदर्श है वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। **तत्वार्थसूत्र** में अपरिग्रह अर्थात उपभोग के संयम का जो वृत्त दिया है वह पर्यावरण विज्ञान का महत्वपूर्ण सूत्र है। इसमें पदार्थ की भोग सीमा निर्धारित की गई है जो संयम का भी प्रतीक है। पदार्थ सीमित हैं इसलिये उपभोग कम करो। इससे स्पष्ट होता है कि धर्म और पर्यावरण पर्याय हैं क्योंकि पर्यावरण संरक्षण ही धर्म का मूल है। यह बात अहिंसा एवं अपरिग्रह के सिद्धान्तों से सिद्ध होती है।

जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल इन सभी में पर्यावरण संरक्षण के तत्व विद्यमान हैं। जैन धर्म की दैनिक धार्मिक क्रियायें जैसे - अहिंसा, छानकर पानी पीना, रात्रि भोजन निषेध, शाकाहार, स्वल्प वस्त्र धारण करना, मन, वचन, कर्म की शुद्धता, ब्रम्हचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह आदि द्वारा जीव रक्षा हो सकती है और ये ही पर्यावरण संरक्षण में सहायक हैं।

पर्यावरण संरक्षण भौतिक जीवन के लिये आवश्यक और आध्यात्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जैन धर्म में तो यहाँ तक कहा गया है कि माँसभक्षी या हिंसक (जो पर्यावरण संरक्षण में बाधक हैं) लोग रास्ते में मिलें तो जैन मुनि को भिक्षा के लिये उधर जाने का विचार नहीं करना चाहिये। माँसाहार से नरक प्राप्ति होती है और इससे किंचित सम्बंध रखने वाला पाप का भागी है। मांस बेचने वाला, पकाने वाला, खाने वाला, खरीदने वाला, अनुमति देने वाला तथा दाता ये सभी हिंसक हैं। ये सभी पर्यावरण प्रदूषक हैं संरक्षक नहीं। जैन धर्म में मांस की कौन कहे जैन साधु के लिये तो घी, दूध आदि भी वर्जित हैं। इससे यह बात स्पष्ट समझी जा सकती है कि जैन शास्त्रों में अहिंसा पर कितना बल दिया गया है। यदि आधुनिक परिवेश में मानव समाज इन सिद्धान्तों से प्रेरित होकर कर्म करें तो ये मानव जीवन और विश्व की सुखं शांति के लिये सार्थक सिद्ध होंगे।

जैन धर्म के सिद्धान्तों का तात्विक विवेचन इसकी वैज्ञानिक स्थिति को पुष्ट करता है। यह धर्म इतना व्यापक, परिपुष्ट और पवित्र है कि इसे शाब्दिक जाल में नहीं बांधा जा सकता। जैन धर्म के सिद्धान्तों का विवेचन और पालन जिस त्याग, तप और साधना द्वारा जैन आचार्यों ने किया है वह अवर्णनीय है। यह मानव जीवन के आदर्श का पर्याय और धर्म का सच्चा स्वरूप है जिसने जीव और अजीव सभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में सम्यक् दृष्टि से एकरूपता का आभास किया है। जैन धर्म की धार्मिक सहिष्णुता ने सही अर्थों में धर्म को एक नयी दृष्टि प्रदान की है जिसका मूल आधार विचारों में अनेकांत और व्यवहार में अहिंसा रही है। पर्यावरण प्रदूषित होने के कारण न केवल मानव जाति को अपितु भूमंडल के समग्र जीवन के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो गया है। उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण जीवन के लिये आवश्यक स्रोतों का इतनी तीव्रता से इतनी अधिक मात्रा में दोहन हो रहा है कि भविष्य में जल की प्राप्ति दूभर हो जायेगी। बढ़ती हुई जनसंख्या और दूषित संस्कृति के कारण पर्यावरण रक्षा का प्रश्न मानव संस्कृति के आगे है। विज्ञान की विनाशक प्रकृति आज मानव सभ्यता के समक्ष प्रदूषण के रूप में सामने है। इनका स्थायी समाधान कहीं दिखाई नहीं देता, अगर समाधान है तो जैन धर्म के उन सिद्धान्तों के पालन में जिसमें प्राणी मात्र के लिये समभाव है।

भगवान् महावीर के अनुसार यदि हमें भयमुक्त उत्तम सुख प्राप्त करना है, तो उसे धर्म द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। वह उत्तम सुख प्राप्ति का साधन धर्म क्या है? अगर इस प्रश्न पर विचार करें तो इसका मूल चिन्तन है आत्मा के निजस्वरूप को प्राप्त करना। **गीता** में भी कहा है "यतो धर्मः ततो जयः" इसका आशय यही है कि हम "work is worship" को आधार बनाकर सहिष्णु भाव से अपने कर्तव्यारूढ़ होकर आगे बढ़ें तो निश्चय ही धर्म की प्रभावना होगी और प्रकृति के जीव-अजीव सभी प्राणियों का संरक्षण करते हुये अपने वातावरण को सुखद बना सकेंगे और यह सुखद अनुभूति हमें जैन दर्शन के रत्नत्रय को अपनाने से ही प्राप्त हो सकती है। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र यह रत्नत्रय ही आत्मा का सच्चा धर्म है। धर्म के प्रचंड प्रताप से पाप आदि दुर्गुण ईंधनवत् जल कर भस्मीभूत हो जायेंगे तब प्रकृति का वातावरण स्वच्छ, निर्मल, सुखद स्वरूप प्राप्त कर उभरेगा और प्रदूषित वातावरण का शमन होगा। यह सब संभव है भगवान् महावीर की अमृतमयी वाणी से प्रस्फुटित पथ पर चलकर।

ऋषभदेव जैन धर्म के प्रथम एवं महावीर अंतिम तीर्थंकर हैं। सभी ने प्रकृति के साथ संतुलन रखने के लिये पृथ्वीकायिक आदि समस्त जीवों के साथ परस्पर उपकार करने के लिये संयम का उपदेश दिया है।उन्होंने जीवकाय एवं पुद्गलों के प्रति संयम रखने की महत्वपूर्ण प्रेरणा दी है। जैन धर्म प्रारंभ से ही प्रकृतिवादी रहा है और आज भी जैन मतावलम्बी सामान्य रूप से अपने आचरणों से, धर्म साधनाओं से एवं उपासना पद्धतियों द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रकृति के संरक्षण एवं संतुलन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। प्रकृति के इसी संरक्षण एवं संतुलन पर सम्पूर्ण पर्यावरण टिका हुआ है। यदि हमें मानव जीवन को बढ़ते हुये प्रदूषण एवं विनाशकारी विभीषिकाओं से बचाना है तो जैन धर्म के सिद्धान्तों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधार बनाकर प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करके "जियो और जीने दो" का रास्ता अपनाना होगा। अगर इसकी उपेक्षा की गई और सार्वजनिक जीवन में अहिंसा, अपरिग्रह जैसे सिद्धान्तों का पालन न किया तो विश्व का पर्यावरण प्रदूषण बढ़ता जायेगा जिसका उत्तरदायित्व शासन का नहीं समाज का एवं स्वयं व्यक्ति का होगा; क्योंकि बाह्य पर्यावरण संरक्षण के अतिरिक्त हमें सर्वप्रथम अपने भावों, विचारों को शुद्ध करना होगा जिसे हम आत्म शुद्धि या "अन्तर्पर्यावरण संरक्षण" का नाम दे सकते हैं। ऐसी तन शुद्धि; मन शुद्धि एवं वचन शुद्धि भगवान् महावीर के बतलाये गये सिद्धान्तों से ही प्राप्त हो सकती है।

जैन एवं जैनेतर धार्मिक साहित्य के अध्ययन एवं मनन से यह बात ज्ञात होती है कि अन्य धर्म शास्त्रों कि अपेक्षा जैन धर्म में पर्यावरण संरक्षण के पर्याप्त निर्देश उपलब्ध हैं। वर्तमान में हो रहे प्रकृति के संसाधनों का दोहन, भूखनन, वायु प्रदूषण, जंगलों का काटना आदि ये सब जैन धर्म के अनुसार महारंभ की श्रेणी में आते हैं, जो अधोगति अर्थात् नरक के कारण हैं। हम आत्म कल्याणियों का कर्तव्य है कि इनसे बचें और जैन धर्म-साधना द्वारा इनका संरक्षण करें।

✸

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण

कमलिनी बोकारिया*

धरातल पर जितने भी जीव हैं, सब जीना चाहते हैं। सिर्फ मनुष्य ही निसर्ग नियमों को छोड़कर अपने ढंग से जीना चाहता है; इसलिये संस्कृति का विकास सिर्फ मनुष्य जाति में हुआ। निसर्ग से हमें जो प्राप्त है वह है प्रकृति। प्रकृति के कार्य में कुछ बिगाड़ हो जावे तो वह है विकृति। प्रकृति को विकृति में बचाने का उपाय है संस्कृति। निसर्ग से प्राप्त पदार्थों को अपने जीवन के लिये अनुक्रम तथा उपयुक्त बदलाव तथा कभी-कभी कुछ संस्कार करके उन चीजों को उपयोग में लाकर मनुष्य अपना जीवन क्रम चलाता है। मानव बाह्यविश्व तथा अंतरचेतना द्वारा मन-बुद्धि पर विजय पाकर अपना जीवन सफल बनाता है। अपना शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा सब सम्मिलित रूप से आनंद पाना चाहते हैं। सृष्टि की विकास प्रक्रिया में मनुष्य सबसे अधिक विकसित है। मनुष्य अपने जीवन के तीन प्रमुख ध्येय मानता है। १) दीर्घ आरोग्यदायी आयु २) ज्ञान का विस्तार ३) उच्च रहन-सहन। उच्च रहन-सहन की आकांक्षाओं में आरोग्यपूर्ण आयु को मानव खो रहा है। ज्ञान की कक्षा का विस्तार तो किया परंतु वह जड़वादी तत्त्वज्ञान तथा भौतिकता पर आधारित होता जा रहा है। परिणामत: उपभोगवादी प्रवृत्तियाँ अधिक से अधिक बढ़ती गईं। निसर्ग से लेकर यंत्रमानव तक सबका उपयोग किया; परंतु विकास के दौर में एक नई समस्या खड़ी होती गई। हर सुधारणा एक नई समस्या को जन्म देती है। यह समस्या है "पर्यावरण के रक्षण" की! धरातल पर हमें जो भी प्राप्त है; वह हमारे जीवन के लिए अत्यंत उपयुक्त है; यह धरोहर ही हमारा "पर्यावरण" है। हवा, पानी, यह जमीन, ऊर्जास्तोत्र मनुष्य ने निर्मित नहीं किये। निसर्ग को मनुष्य ने क्या दिया? निसर्ग कृतज्ञ है। नारियल के पेड़ को पानी मिलता है, तो वह अधिक मीठा पानी लौटाता है। धरती एक बीज के सैकड़ों बीज बना कर मनुष्य को लौटा देती है। पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश इन पँचमहाभूतों के स्तर बदलते जा रहे हैं। क्योंकि मनुष्य अपनी बुद्धि का जाल फैला रहा है। प्रकृति में विकृति पैदा कर रहा है। यही पर्यावरण की यानि प्रदूषण की समस्या है।

"जैन धर्म" आत्मलक्षी धर्म है। जैन साधना में आत्मा प्रमुख है। अहिंसा और दया इसके प्रमुख आधार हैं। भगवान् महावीर कहते हैं -

*ग्रूप बी; पत्र व्यवहार का पता - ६४, मेलीबेस सीमेन्ट कार्नर, बीड, महाराष्ट्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोगो अकिट्टिमो खलु, अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो।
जीवाजीवहिं फुडो, सव्वागासावयवो णिच्चो।।[१]

वस्तुत: लोक अकृत्रिम है, अनादिनिधन है, स्वभाव से ही निर्मित है। जीव और अजीव द्रव्यों से व्याप्त है। संपूर्ण आकाश का ही एक भाग है तथा नित्य है।

"सत्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं"[२]

सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता।

"जावंति लोए पाणा, तसा अदुव थावरा।
ते जाणमजाणं वा, णं हणे णो वि घायए।।"[३]

लोक में जितने भी त्रस-स्थावर जीव हैं उनका हनन न करें। जैन धर्म की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसने पृथ्वी, अप्, तेज और वायु को जीव समझा। सिर्फ पंचमहाभूत नहीं माना।

कषायों के वशीभूत होने से हिंसा घटित होती है। प्रत्यक्ष हिंसा हो या न हो परंतु कषाय की उत्पत्ति आत्मघाती हिंसा है। जैन धर्म हिंसा के कारणों पर प्रकाश डालता है। मनुष्य हिंसा करता है :

१) अपने जीवन यापन के लिये
२) प्रशंसा पाने के लिये
३) सम्मान की प्राप्ति के लिये
४) पूजा आदि पाने के लिये
५) जन्म निमित्त से
६) मृत्यु निमित्त से
७) मुक्ति की लालसा से
८) दु:ख के प्रतिकार हेतु

इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए, जाई-
मरण मोयणाए दुक्ख पडिघात हेतुं।।७।।[४]

सावद्य क्रिया से कर्मबन्ध होना मनुष्य जान लेगा तो वह "प्रत्याख्यान परिज्ञा" को अपनाकर पर्यावरण संरक्षण में सहयोग देगा। इस बारे भगवान् महावीर ने परिज्ञा-विवेक का आदेश दिया। कोई व्यक्ति जीवन यापन के लिये, प्रशंसा मान आदि के लिये पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करता है, करवाता है या अनुमोदन करता है, उसकी अबोधि अर्थात् ज्ञान-दर्शन-चारित्र बोधि की अनुपलब्धि के लिए कारणभूत होगी।[५] रहने के लिये मकान चाहिए। दो कमरे में पर्याप्त ढंग से जीया जा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकता है वहाँ बड़े-बड़े महल बनाना, सिर्फ प्रशंसा पाने के लिए; मान-सम्मान के लिये आवश्यकता से अधिक ग्रहण करना अनर्थदंड है। इसे हम टाल सकते हैं। पर्यावरण की सुरक्षा के लिए पहला कदम है पृथ्वीकायिक जीवों पर शस्त्राघात नहीं करना। करना भी पड़े तो मर्यादा में -

युक्ताचरणस्य सतो रागाद्यावेशमन्तरेणापि।
न हि भवति जातु हिंसा प्राणव्यपरोपणदेव।।[६]

सजगता में कोई कर्म करते हिंसा हो जावे तो उसका निकाचित कर्मबंध नहीं होता। परंतु प्रदूषण की दृष्टि से दोष हो सकता है। इसलिए इसे प्रतिबंधित करना होगा।

हम आज क्षमाशीला पृथ्वी के साथ अन्याय कर रहे हैं। मनुष्य का लोभ और मान अधिक से अधिक भोग चाहता है और वह पर्यावरण का समतोल नष्ट करता है। जो विचार पृथ्वीकायिक जीवों के लिये है वही अप्कायिक जीवों के लिये भी है। एक बाल्टी पानी में जो काम हो सकता है, उसके लिये घंटों - पाईप चालू रखना अप्कायिक जीवों की हिंसा है। पानी का अपव्यय होने का कारण है इसकी बिना श्रम उपलब्धि! उसमें भी विराधना है। एक लापरवाही हिंसा तथा प्रदूषण को आमंत्रण देती है। अप्काय को महाभूत कहा है। आखिर भूत भूत है। वह अपना करिश्मा दिखा देगा।

"से बेमि-णेव सयं लोयं अब्भाइक्खेज्जा"[७]

लोक याने अप्कायिक जीवों का निषेध न करें। शास्त्रकार का कथन है कि जो व्यक्ति अप्कायिक जीवों की सत्ता को नकारता है, वह अपनी ही सत्ता को नकारता है। जल के तीन प्रकार हैं १) सचित्त २) अचित्त और ३) मिश्र[८]। जल काय के सात शस्त्राघात बताये गये हैं। वे इस प्रकार हैं-

१) उत्सेचन - कुएँ आदि से जल निकालना

२) गालन - जल छानना

३) धोवन - जल से उपकरण - बर्तनादि धोना

४) स्वकाय शस्त्र - एक स्थान से दूसरे स्थान पर जल ले जाना

५) परकाय शस्त्र - मिट्टी, तेल, शर्करा आदि से युक्त जल

६) तदुभय -

७) भावशस्त्र - असंयम

भावशस्त्र बिना सोचे-समझे चलाया जा रहा है। तेलशोधक कारखानों का गन्दा पानी समुद्र में छोड़ दिया जाता है जो उसकी सतह पर लहरा रहा है। कारखानों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का गन्दा पानी समुद्र में बहा दिया जाता है। समुद्री वनस्पति द्वारा इसका शोषण हुआ, वह वनस्पति मछलियों ने खाई। जिनमें अधिकांश की मृत्यु हुई। आज घर-घर में बर्तन माँजने, कपड़े धोने के लिये डिटर्जेंट का उपयोग किया जाता है। इससे फॉस्फोरस पानी में मिल जाता है, जिससे जलपर्णी नदी-नालों में अधिक पनपती है। उस कारण से वहाँ सड़न पैदा होती है। उस सड़न के लिये अधिक प्राणवायु की जरूरत होती है। परिणामत: पानी में प्राणवायु घट जाता है जो दूसरे जलचर जीवों के लिये अत्यंत जरूरी है। कीटनाशक दवाईयाँ भी पानी में पड़ती हैं तो जलचर जीव नष्ट हो जाते हैं। साथ ही साथ जलचर जीवों का जो एक Biological Balance है, वह खंडित हो जाता है।[९]

प्रकृति में उत्पत्ति - विकास और विनाश का चक्र अबाध रूप से चल रहा है जिसमें जलचक्र, नाइट्रोजन चक्र, कार्बनचक्र, बीज वृक्ष चक्र, दिन-रात, गरमी-शीत, पृथ्वी, वनस्पति, प्राणी का मृत्योपरान्त पृथ्वीतत्त्व में विलीनीकरण, श्वास-उच्छवास; ग्रहण-विसर्जन, संकुचन-प्रसरण जारी है। श्वास के साथ ऑक्सीजन अंदर जाता है, उच्छवास में कार्बन डाई आक्साइड आता है जो वनस्पति के लिये आवश्यक है। वनस्पति प्राणवायु छोड़ती है जो प्राणी के लिये आवश्यक है। वनस्पति को काट कर हम अपने प्राणों का आयाम ही तोड़तें हैं और नाक दबाकर प्राणायम करने का ढोंग करते हैं। मनुष्य तथा प्राणी की विष्ठा से वनस्पति भोजन *ग्रहण करती है तो वह फल-फूल-पत्ते हमें देती है। यह चक्र है संतुलन का।*[१०] प्राणी का शरीर जब सड़ने लगता है तो उसमें समुर्च्छिम जीवों की उत्पत्ति होने लगत है। उसमें से नत्रवायु निकलता है। यही नत्रवायु सूक्ष्म जीवाणु द्वारा वायुमंडल में स्थिर रहता है। परस्परावलंबन-परस्पर सहायता के आधार पर अपनी उपजीविका चलती है। निसर्गचक्र की बुलंद कड़ियों को तोड़ने का काम आज मनुष्य कर रहा है। कुछ दिये बिना लेना मनुष्य की प्रवृत्ति बनती जा रही है। आत्मकेंद्री प्रवृत्ति के कारण सिर्फ प्रकृति से लिया, दिया कुछ नहीं। यदि दिया है तो हिंसक शस्त्राघात।

शस्त्राघात से तेजकायिक जीव भी बचते नहीं। जो तेजकायिक जीवों की अपलाप करता है, वह अपना स्वयं का अपलाप करता है। जल तथा अग्नि को देवता माना जाता रहा है। भगवान् महावीर ने अहिंसा की दृष्टि से जल और अग्नि को जीव माना। पंच प्रमाद में (मद्य, विषय, कषाय,निद्रा व विकथा) व्यक्ति जब उलझ जाता है तब रांधना, पकाना, प्रकाश, ताप आदि की वांछा करता है।[११]

औद्योगीकीकरण, यांत्रिकीकरण और वाहनों के उपयोग से तेजकाय जीवों का हिंसा होती है। दूरी का कारण बताकर स्वयंचलित - वाहनों की उपयोगिता का समर्थन किया जाता है। लेकिन पेट्रोल के ज्वलन से वातावरण में विषैली गैसें फैल जाती हैं। यातायात की समस्या और साथ ही साथ प्रदूषण की भी समस्या है जो श्वाससंबधी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोगों को आमंत्रण है। मस्तिष्क के रोग भी लेड ऑक्साइड के कारण हो सकते हैं। यातायात के नियमों का उल्लंघन, जल्दबाजी, नशाखोरी, आगे निकलने की कोशिश आकस्मिक हादसों को निमंत्रण देती है। एक दिन (सप्ताह में) यंत्रचलित वाहन बंद रखें तो प्रदूषण का थोड़ा-बहुत निराकरण होगा और सकुन भी मिलेगा।

पृथ्वी, तृण, पत्र, काष्ठ, गोबर, कूड़ा आदि में बहुत जीव रहते हैं। कुछ उड़नेवाले कीट-पतंग आदि होते हैं। वे अग्नि का संघात पाकर, अग्नि की उष्णता से संकोच को प्राप्त होते हैं। बाद में मूर्च्छित होकर मर जाते हैं। अग्निकाय का शस्त्राघात निम्न सात प्रकारों से होता है -

१) मिट्टी या धूल से
२) आर्द्र वनस्पति अग्नि को प्रतिबंध करती है प्रज्वलित नहीं होने देती
३) त्रस प्राणी
४) स्वकाय शस्त्र अग्नि से अग्नि प्रज्वलन - दियासलाई
५) परकाय शस्त्र - गैसलाईटर
६) तदुभय
७) भावशस्त्र - असंयम

भावशस्त्र याने असंयम बढ़ता जा रहा है। परिज्ञात कर्ता बनकर अग्निकाय का उपयोग करें।[१२]

बिजली के उपयोग का विचार भी अनुचित नहीं होगा। कई दार्शनिक बिजली को तेजकाय मानते हैं। परंतु बिजली और तेज-काय में अन्तर है। बिजली पर पानी पड़ेगा तो वहाँ विस्फोट होगा। अग्निपर पानी पड़ेगा तो (शस्त्राघात) अग्नि बुझ जायेगी। अग्नि का ईंधन लकड़ी है और बिजली के लिये लकड़ी विरोधक है। बिजली के तार प्लास्टिक में अवगुंठित किये जाते हैं और अग्नि प्लॉस्टिक को पिघला देती है। इस बारे में **भगवतीसूत्र** के छटे शतक में नौवी गाथा में स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

"विज्जुये तमस काये भिन्ने" (श्री मधुकर मुनिजी लिखित टीका, **भगवती,** भाग २ पृ० ५६)। फिर भी बिजली की चकाचौंध से अनेक पतंगों की विराधना होती है। दीपावली के अवसर पर पटाखों की चकाचौंध और गंधकयुक्त वायु वातावरण को भर देती है। इससे कितने ही कीट-पतंगे जो रात में विश्राम कर रहे होते हैं उनकी विराधना होती है। इस प्रकार राष्ट्रीय उर्जाशक्ति का दुरुपयोग होता है। इस शक्ति की सहाय से हम लोकोपयोगी कार्य कर सकते हैं।

भौतिक अभ्युदय में एक महत्त्वपूर्ण बात है औद्योगिकीकरण। जीवन के सुलभीकरण के लिये यांत्रिकीकरण आवश्यक बनता जा रहा है। यांत्रिकी सुविधाओं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के कारण वातावरण की शांति नष्ट हो रही है। वातावरण में जब कोई आघात होता है तो कंपन पैदा होते हैं। किसी माध्यम का सहारा लेकर वे फैलते हैं। इन ध्वनितरंगो को नापा जा सकता है। ६० से ७० डेसीबल ध्वनि सह्य होता है; परंतु ध्वनि ११० से १४० डेसीबल तक बढ़ाते हैं जो श्रवणेन्द्रियों के लिये हानिकारक है।

वायुप्रदूषण में मुख्यतः कार्बन डाई आक्साइड का प्रमाण बढ़ने से पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है। तापमान की इस वृद्धि के कारण समुद्र तक बढ़ता जा रहा है। यह गति ऐसी ही रही तो समुद्रतटीय प्रदेश कैलिफोर्निया, मैक्सिको, अफ्रीका के किंनारी प्रदेश, भारत के तटवर्ती भाग समुद्र निगल जायेगा। उत्तर ध्रुवीय प्रदेश में बर्फ पिघलकर समुद्र तल ऊपर उठेगा। दक्षिण ध्रुवीय क्षेत्र पर भी बर्फ की रचना में पतलापन आयेगा। जैन दर्शन की मान्यतानुसार अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल की समाप्ति के बाद सब सृष्टि जलमय हो जायेगी। पुराणों में भी इसकी पुष्टि मिलती है। औद्योगिकीकरण से नत्रवायु, कर्बवायु, गंधक वायु हवा में मिल जाती है। वाहनों से लेड ऑक्साईड जैसे वायु हवा में मिल जाते हैं। वर्षा के पानी में वे मिल जाते हैं। जमीन पर जब वर्षा होती है तो यह आम्लीय गुणधर्म का पानी जमीन के सत्त्व को बिगाड़ देता है। हजारों हेक्टेयर जमीन अपनी उपज क्षमता खो चुकी है। रासायनिक खाद डालकर मनुष्य ने उसे और बिगाड़ दिया है। शास्त्रों में उल्लेख मिलते हैं कि जब सुषमा आरा चल रहा था, तो उस समय जमीन का स्वाद मिश्री जैसा था। आज न तो वह स्वाद रहा न उत्पादन क्षमता रही। जैन आगमों ने यह बात २५०० वर्ष पूर्व कही थी। किसी भी जीव के अस्तित्व के लिये वायु आवश्यक है। वायुप्रदूषण करने में हमने सिर्फ धरातल ही बिगाड़ा ऐसी बात नहीं। अन्तरिक्ष यान आकाश को आंदोलित कर रहे हैं और ओजोन के स्तर को क्षति पहुँचा रहे हैं।

जो दूसरों के दुःख समझ सकता है वही हिंसा से परावृत्त होता है। वही व्यक्ति हिंसा से निवृत्त होने में समर्थ है। जो अपने को और दूसरे को एक तराजू में तौलता है। संयमी पुरुष हिंसा नहीं करेगा यही जिनशासन कथित मार्ग है।[१३] अज्ञान से प्राणी समझता है कि वह दूसरे को दुःख पहुँचा रहा है, परंतु शास्त्रकार ने यहाँ बतलाया है कि उसने सुख-दुःख के रहस्य को नहीं समझा। दूसरे को दुःखी बनाने वाला स्वयं दुःखी बनता है। वैसे ही दूसरे को सुखी बनाने वाला अपने आपको सुखी बनाता है।

भगवान् ने वायुकायिक हिंसा के विषय में परीक्षा बतलायी है। इसी जीवन का निर्वाह करने के लिए, प्रशंसा, सम्मान, सत्कार और महिमा पूजा के लिये, जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिये, शारीरिक और मानसिक दुःखों का निवारण करने के लिये जो वायुकाय की हिंसा करता है, करवाता है, अनुमोदना देता है: वह हिंसा उसके लिये अहितकर है।[१४] आज हम यह हिंसा करते हैं। प्रदूषण का पाप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हैं। संघ-दर्शन के नामपर रात बे-रात गाड़ियाँ भगाते हैं। संतों का दर्शन ३० मिनट का और विराधना ३० घंटे की। फिर उस पर दर्शन का गर्व जताते हैं। क्योंकि स्पेशल गाड़ी लेकर गये। सार्वजनिक वाहन का उपयोग करते तो ठीक होता।

आज आधुनिक विज्ञान ने वनस्पति के बारे में जो उपलब्धियाँ पायी हैं; वे सब भगवान् महावीर ने पहले ही प्रस्तुत की हैं। भारत के महान् वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु ने यंत्र द्वारा वनस्पति पर प्रयोग किये और सिद्ध किया कि उसमें संवेदनशीलता है। संगीत, प्रेम और सहानुभूति को वनस्पति स्वीकार करती है। भगवान् महावीर ने जम्बू स्वामी से फर्माया, वनस्पति में सजीवता है। जैसे शरीर जन्मता है बढ़ता है वैसे ही वनस्पति जन्मती है विकसित होती है। शरीर के विकास के लिये जिस प्रकार अन्न की आवश्यकता है, उसी प्रकार वनस्पति को भी पानी, खाद, सूर्य के प्रकाश रूप भोजन की आवश्यकता है। शरीर का कोई अवयव शरीर से कट जाता है तो सूख जाता है उसी प्रकार वनस्पति भी कटने पर सूख जाती है। शरीर सचित्त है वनस्पति भी सचित्त है। शरीर अशाश्वत है मृत्यु को प्राप्त होता है वनस्पति भी नश्वर है।[१५] बसु का संशोधन भी यही बताता है। गुणभाव पर्याय सब विधाओं से मनुष्य और वनस्पति में समानता है। इसलिये वनस्पति पर शस्त्राघात हिंसा है और वह अपनी स्वयं की है। सृष्टिचक्र के अनुसार वनस्पति प्राणवायु उत्सर्जित करती है; जो प्राणी के लिये जरूरी है। वनस्पति को तोड़ना अर्थात अपने प्राण की क्षति करना है।

बेशुमार जंगल कटने से जमीन खुल जाती है; उसका कसाव कम हो जाता है। जब तेज हवा चलती है तो जमीन की ऊपरी पर्त हवा से उड़ जाती है। बरसात का पानी जो पहले पेड़ पर पड़कर जमीन पर गिरता था वह वृक्ष कटने के कारण धड़ल्ले से जमीन पर गिरता है। पानी के तेज बहाव में मिट्टी बह जाती है कारण पेड़ की जड़ें पेड़ कटने के कारण उखड़ गयी हैं। इसलिए जमीन बंजर बनती जा रही है। नदी पर बने बांधों के कारण मिट्टी तालाब में पड़ी रहती है। हालाँकि नदी का तटवर्ती प्रदेश अधिक उपजाऊ बनता था। जमीन में रासायनिक खाद की मात्रा बढ़ती जा रही है जिससे जमीन क्षारीय बन रही है। ईंधन के लिये वृक्ष कटते हैं। फर्नीचर आदि के लिये वृक्ष कटते हैं। किसी खुली जगह पर घर बनवाना है और उस जगह में कोई पेड़ है तो उसे भी काटते हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के निर्माण के समय पं० मदनमोहन मालवीय ने भवन का आकार बदल दिया परंतु पेड़ नहीं काटे। ग्रीटिंग कार्डस्, विवाहादि की निमंत्रण पत्रिका जो आर्टपेपर पर छपती है, उसके लिये चिकने पेड़ कटते हैं। शास्त्र का उचित ज्ञान न होने से ये हिंसा बढ़ती है। प्रदूषण बढ़ता है। पर्यावरण दूषित होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५ कर्मदानों में भगवान् महावीर ने अनेक धंधे-व्यवसाय करने से प्रतिबंधित किया है। इंगालकम्मे - चूना आदि की भट्टी लगाना, वणकम्मे दावग्गदावण्यिा याने जंगल खरीदना, कटवाना, बेचना, जंगल में आग लगाना निषिद्ध है। साड़ीकम्मे, भाड़ीकम्भे भी वनस्पति से संबंधित है। घोड़ागाड़ी बनाने के लिये लकड़ी की जरूरत है। फिर किराये से देने की बात आयेगी। लख्खवणिज्जे - याने लाखका व्यवसाय- पीपल जाति के वृक्ष का वह निकास है जो अत्यंत सूक्ष्म जंतुओं द्वारा निक़लता है। दंतवणिज्जे प्राणी से संबंध रखता है। रसवणिज्जे अप्‌काय से संबंधित है। यदि स्थूलरूप से देखा जाय तो सभी १५ कर्मदान अहिंसा के दृष्टिकोण से ही कहे गये हैं; जिसमें सामाजिक सुरक्षा की भी दृष्टि है।

आज समाज में जड़वादी विचारधाराएँ अधिक रफ्तार से बढ़ रही हैं। भौतिक सुखों के पीछे मनुष्य दौड़ रहा है। सुख निश्चित रूप से कहाँ है, इसका ज्ञान मानव को नहीं मिला।

"तेल्लोक्काडविडह्णो कामग्गी विसयरुक्खपज्जलिओ
जोवण्णतणिल्लचारी, जं ण डहइ सो हवइ धण्णो।।३६।।"[१७]

विषयरूपी वृक्षों से प्रज्वलित कामाग्नि तीनों लोकरूपी अटवी को जला देती है। यौवनरूपी तृण पर संचरण करने में कुशल कामाग्नि जिस महात्मा को नहीं जलाती वह धन्य है। यदि यह ज्ञान मनुष्य में होता तो उसमें ऐशपरस्ती नहीं बढ़ती। यश-कीर्ति के पीछे मानव दौड़ रहा है।

इसी प्रकार के भाव लेकर अहंकार का पोषण करता हुआ मनुष्य सप्तकुव्यसनों में जा पड़ता है।

"मद्य मास वेश्यागमन परनारी व शिकार
जुआ चोरी जो सुख चहै सातो व्यसन निवार"[१८]

नशीले पदार्थों का सेवन करना उचित नहीं। अपना पेट, पेट है कोई कब्रिस्तान नहीं। अपने जिह्वालालित्य के लिये किसी के प्राण लेना अनुचित है। धर्मग्रंथों में वर्णन है, बहुपत्नीत्व प्रथा का; सुबाहु कुमार, कृष्ण, राजा श्रेणिक इसके प्रमाण हैं। इसलिये "स्वदार संतोष परदार विवर्जन" ऐसा चौथे व्रत का स्वरूप रखा। उसमें भी "इत्तरिय्या से गमन" और "अपरिग्गया से गमन" निषिद्ध है। अनंगक्रीड़ा तथा कामभोग की तीव्र अभिलाषा भी प्रतिबंधित है। मानसिक संतुलन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

असंतुलन का परिणाम ही भोगवाद है। इस की हवस ने ही पर्यावरण को बिगाड़ा है। कषायों से अभिभूत होकर विकथा में बहना प्रमाद है। प्रमाद याने अजागरूकता = मूर्च्छा। मूर्च्छा में मनुष्य अपने होश खो देता है और क्रोध-मानादि में उलझ जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिंसा शब्द के दो अर्थ हैं, एक आत्मघात दूसरा परघात। कषायभाव उत्पन्न होते ही आत्मघात हो जाता है। यदि किसी की आयु पूर्ण न हुई हो, पाप का उदय न हुआ हो; कर्म उदीरण अवस्था में न आये हों, तो वह परघात घटित नहीं होगा। लेकिन कषाय जागते ही आत्मघात तो होगा ही। इसलिये पर्यावरण संरक्षण के दोहरे उपाय जैनों ने बताये हैं। जीवादिक षट् कायजीवों की रक्षा करना और कषाय मनोवृत्ति से अपने आपको बचाना। मानव परस्पर और तिर्य्यंच से संबंध दयामय बनाये। आंतरिक प्रदूषण पहले उद्‌गमित होता है बाद में स्थूल हिंसा होती है।

जैन धर्म ग्रंथों में अनेक स्थलों पर उद्यानों का निर्देश मिलता है। **अन्तकृत दशासूत्र** में इस प्रकार उद्यानों के उल्लेख हैं -

१) चम्पानगरीमें ईशान कोण में "पूर्णभद्र" **नामक [चैत्य** उद्यान] था, वहाँ अतिरमणीय "वनखंड था। यहाँ एक ही जाति के वृक्ष प्रधान होते थे।

२) तीर्थंकर परंपरा से विचरते हुये भगवान् अरिष्टनेमि द्वारिका नगरी के बाहर "नंदनवन" नामक उद्यान में पधारे।

३) भद्दिलपुर नगर के बाहर "श्रीवन" नामक उद्यान था।

४) राजगृह नगरी में "गुणशील" नामक उद्यान था।

५) राजगृह नगर के बाहर अर्जुन माली का विशाल बगीचा था। वह नीले पत्तों से आच्छादित होने के कारण आकाश में चढ़े हुए घनघोर घटा के समान दिखाई देता था। उसमें पाँचों वर्णों के फूल खिले हुए थे। वह हृदय को प्रसन्न एवं प्रफुल्ल करने वाला एवं दर्शनीय था।

"**ज्ञाताधर्मकथासूत्र**" में "नंदमणिकार" ने एक पुष्करणी बनाई थी, उसका वर्णन है। राजा की अनुमति लेकर वास्तुशिल्पी द्वारा नंदमणिकार ने पुष्करणी का निर्माण कराया। राजगृहनगर के बाहर ईशान कोण में वैभारगिरि पर्वत की तलहटी में पुष्करणी बनाना तय हुआ। चतुष्कोणाकृति समतल जमीनपर पुष्करणी का निर्माण किया गया। मध्य में शीतल जल से भरी हुई बावड़ी बनाई गई। पुष्करणी के चारों ओर "वनखंड" बनवाये । पूर्व दिशा के वनखंड में एक "चित्रशाला" बनवाई। जिसमें काष्ठशिल्प, वस्त्रचित्रकारी आदि का उत्कृष्ट प्रदर्शन किया गया। उत्तम मणियों से उसको सुशोभित किया गया। दक्षिण दिशा में "भोजनशाला" बनवाई जहाँ कोई भी पथिक अपनी रुचिनुसार भोजन पाता। पश्चिम दिशा में "चिकित्सालय" बनवाया। वहाँ का वातावरण इतना प्रसन्न था कि थकावट भाग जाती थी। फिर उत्तरदिशा में "नापित शाला" खुलवाई। पथिक तेल उबटन से मालिश करा ले। ऐसी सुंदर योजना थी और कार्य था। पर्यावरण का एक अजोड़ नमूना यह पुष्करणी थी जैसे आजकल Hollyday Resort बनाये जाते हैं। निसर्ग या प्रकृति ही आनंद का स्रोत है। जो यहाँ पा सकते हैं वह कहीं नहीं पायेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस पूरी चर्चा के बाद प्रश्न उठता है कि जैनों का पर्यावरण संरक्षण में कौन सा योगदान होना चाहिये? धर्म ग्रथों में लिखा हुआ धर्म, धर्म स्थानकों में प्रदर्शित धर्म और ऐसे धार्मिक लोगों का जीवन, इन तीनों में अंतर नहीं होना चाहिये। पर्यावरण की जो क्षति हमसे हो रही है उसमें हमारा उत्तरदायित्त्व क्या होना चहिए? इसे सोचना जरूरी है। धर्म ग्रंथों ने संस्कृति को तहस-नहस करना नहीं सिखाया। जैनधर्म की अष्ट प्रवचनमाताऐं हमारा दैनिक जीवन सुधार सकती हैं। ईर्यासमिति एकेन्द्रिय से लेकर पंचेद्रिय तक के जीवों की हिंसा से हमें रोकेंगी। ''जयं चरे जयं भासे'' का अर्थ मन में सोचें और सोच के अनुसार चलें। षट्काय जीवों की रक्षा करें। भाषासमिति में सावद्य भाषा का प्रयोग करें। विकथा न करें जो कषायों को बढ़ावा देती हैं। एषणासमिति से भोगवाद का संतुलन करें। शुद्धि-अशुद्धि का विचार रखें। अन्न का दुरुपयोग न होने दें। यश-कीर्ति, मान-सन्मान की आकांक्षा मर्यादित रखें। निक्षेपना - कोई भी वस्तु लेते-देते समय सावधान रहें। उच्चार-प्रस्त्रवरण, कूड़ा-करकट, अनुपयुक्त वस्तु ठीक ढंग से डालें। तंबाकू आदि खाकर यहाँ-वहाँ थूकना भी पर्यावरण बिगाड़ता है। मन कषायों से भ्रमित न हो। वचन हित, मित, मधुर और गंभीर हो। जोर-जोर से चिल्लाकर बोलने से वायुकायिक जीवों की विराधना होती है। काया से श्रमशीलतापूर्वक स्वच्छता से जुड़े रहना चाहिए। महिलायें इसमें अधिक सहयोग दे सकती हैं। अन्न का दुरुपयोग टालना, आवश्यक मात्रा में अन्न पकाना, अन्न पकाते वक्त पोषणयुक्त अन्न पकाना, पानी का अपव्यय टालना, सौर उर्जा का उपयोग करना, थोड़ी सी दूरी पर जाने के लिए स्वयंचलित प्रदूषण फैलानेवाले वाहन का प्रयोग न करना, रेशम जैसा हिंसक वस्त्र न रखना, मुलायम चमड़े की थैली नहीं रखना और रूप-सज्जा के लिये हिंसक प्रसाधन का उपयोग तो उन्हें बिल्कुल नहीं करना चाहिए। सोना चांदी भी पृथ्वीकाय जीव हैं।

यदि हम समग्र रूप से विचार करें तो वह विचार बुद्धि के उस पार है। उस पार अर्थात् हमें आत्मा के पास जाना होगा। जड़वाद को छोड़कर चैतन्य का अनुगामी बनना होगा। विभाजनवादी प्रवृत्ति को छोड़कर एकीकरण को अपनाना होगा। द्वेष के स्थान पर प्रेम को बढ़ाना होगा। शोषण को छोड़कर पोषण अपनाना होगा। संघर्ष से समन्वय की ओर बढ़ना होगा। विराधना को छोड़कर आराधना में आना होगा। प्रकाश की ओर ले जाने वाला यह प्रकाशायन है। मृत्यु से अमरत्व की ओर प्रवाहित करने वाला अमृतायन है। प्रदूषण से पर्यावरण संरक्षण सिखलाने वाला निसर्गायन है।

संदर्भ सूची

१) **समणसुत्तं**, गाथा क्र० ६५१.

२) वही, गाथा क्र० १४८.

३) वही, गाथा क्र० १४९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४) **आचारांगसूत्र**, प्रथम उद्देशक, गाथा ७, पृष्ठ ७.
संपा० युवाचार्य मधुकर मुनि
५) **आचारांगसूत्र**, प्रथम उद्देशक, गाथा १३, पृ० ९.
६) **अमृतचन्द्राचार्य-पुरुषार्थ सिद्धुपाय**, गाथा क्र० ४५, पृ० २५-२६.
७) **आचारांगसूत्र**, तृतीय उद्देशक, गाथा २२, पृ० १५.
८) वही, गाथा २६, पृ० १७-१८.
९) **निसर्गायन** - दिलीप कुलकर्णी (मराठी)
१०) **सुधाकर** मासिक (मराठी)
११) **आचारांगसूत्र**, चतुर्थ उद्देशक, गाथा ३३, पृ० २१.
१२) **आचारांगसूत्र**, चतुर्थ उद्देशक, गाथा ३७, पृ० २३.
१३) **आचारांगसूत्र**, सप्तम उद्देशक, गाथा क्र० १, पृष्ठ २५.
संपा० अमोलक ऋषि
१४) **आचारांगसूत्र**, सप्तम उद्देशक, गाथा क्र० ३, पृष्ठ २६.
१५) **आचारांगसूत्र**, पंचम उद्देशक, गाथा क्र० ४५, पृष्ठ २७.
१६) **आवश्यकसूत्र**.
१७) **समणसुत्तं**, गा०क्र० ११७, पृष्ठ ३८.
१८) **जैनधर्म परिचय**
१९) **पुरुषार्थसिद्ध्युपाय**, गाथा ४७, पृ० २६.
अमृतचन्द्राचार्य

संदर्भ ग्रंथ

१) **आचारांगसूत्र**, संपा० - मधुकर मुनि
२) **आचारांगसूत्र**, संपा० - अमोलक ऋषि
३) **ज्ञाताधर्मकथा**, संपा० - मधुकर मुनि
४) **अंतगडदसाओ**, संपा० - मधुकर मुनि
५) **आवश्यकसूत्र**.
६) **निसर्गायन**, दिलीप कुलकर्णी
७) **भारतीय संस्कृति कोश**, खंड १
८) **पुरुषार्थसिद्ध्युपाय**, अमृतचन्द्राचार्य
९) **समणसुत्तं**
१०) **जैन धर्म परिचय**
११) **सुधाकर** 'मासिक'
१२) **मंथन**, कमलिनी बोकारिया

✹

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण

मनोरमा जैन*

परि + आवरण = पर्यावरण। चारों ओर प्रकृति का ढका हुआ आवरण ही पर्यावरण है। पर्यावरण में जीव सृष्टि एवं भूगर्भ और आसपास की परिस्थितियों का समावेश होता है। पर्यावरण में जैविक और अजैविक घटक होते हैं और सभी घटकों की निश्चित भूमिका होती है। इन घटकों में सामन्जस्य रहने पर पर्यावरण संतुलित रहता है। पर्यावरण ही जीवन और जगत् को पोषण देता है। जैन धर्म में पर्यावरण के मूल घटक पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति के दुरुपयोग, अति उपयोग या विनाश से संबधित सामाजिक एवं धार्मिक निषेध स्थापित किए गए हैं जिससे प्रकृति प्रदत्त इन उपहारों का आदर हो सके और पर्यावरण भी प्रदूषित न हो।

पर्यावरण को दो भागों में विभाजित किया गया है - बाह्य एवं आन्तरिक।

१. **बांह्य पर्यावरण** में भौतिक पर्यावरण, पारिवारिक पर्यावरण, सामाजिक पर्यावरण, राजनैतिक पर्यावरण और आर्थिक पर्यावरण रखे जा सकते हैं।

२. **आन्तरिक पर्यावरण** में मानसिक पर्यावरण और धार्मिक पर्यावरण आते हैं।

भौतिक पर्यावरण में पर्वत, नदी, सरोवर, वन, समुद्र आदि हैं। प्राचीन काल में पर्यावरण पूर्ण रूप से संतुलित था। वर्तमान में अपनी भोगलिप्सा के कारण व्यक्ति को प्रकृति के साथ अनावश्यक छेड़-छाड़ के कारण कदम-कदम पर प्राकृतिक विपदाएं झेलनी पड़ रही हैं। आज यदि जैन धर्मानुसार मानव प्रकृतिप्रदत्त वस्तुओं का दुरुपयोग बंद करे तो निश्चित रूप से वर्तमान भौतिक पर्यावरण सुरक्षित हो सकता है।

जैन साहित्य में पारिवारिक वातावरण के अंतर्गत पारिवारिक संबंधों के विषय में जानकारी मिलती है। यहां पति-पत्नी का मधुर संबंध, सन्तान के लिए माता-पिता का स्नेह, स्वामी का सेवक के प्रति नम्रता का व्यवहार परिलक्षित होता है। पति-पत्नी, माता-पिता आदि के मधुर संबंध से लड़ाई झगड़े समाप्त हो जाते हैं। इससे पारिवारिक प्रदूषण और सामाजिक प्रदूषण समाप्त हो जाते हैं। जब घर में शान्ति होगी तो समाज में भी शान्ति रहेगी। समाज में शान्ति होने से देश व राष्ट्र में भी शान्ति का वातावरण रहता है। पारिवारिक वातावरण से सामाजिक और मानसिक पर्यावरण सुरक्षित रहता है और इससे आध्यात्मिक पर्यावरण भी विशुद्ध

*ग्रूप बी; पत्र व्यवहार का पता - ५/७७९, विरामखंड, लखनऊ (उ०प्र०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहता है। जैनधर्म में मानव कल्याण की भावना प्रतिबिम्बित है। इसमें विनय, व्यवहारकुशलता, शुद्धि-अशुद्धि में शक्यानुसार विवेक, दानवृत्ति, सहयोग, सेवा, परोपकार, करुणा, दया, शाकाहार आदि गुण हैं जो सामाजिक पर्यावरण संरक्षण के लिए आवश्यक हैं।

जैनाचार्यों का राजनैतिक चिन्तन सदैव नैतिक मूल्यपरक और दूसरों को प्रेरणा प्रदान करने के साथ-साथ स्वयं अनुशासन में बद्ध होने का रहा है और इन्होंने इस लोक की आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक बातों पर प्रकाश डालते हुए आध्यात्मिकता की तरंग में इस लोक की प्रत्यक्ष शारीरिक आवश्यकताओं से संबंधित विषयों पर लेखनी चलायी है।

जैनाचार्यों ने आर्थिक पर्यावरण के अन्तर्गत आर्थिक गतिविधियों को परिलक्षित कर तद्नुरूप धनोपार्जन, व्यवसाय आदि आर्थिक क्रियाएं सम्पन्न करने के लिए प्रेरित किया है ताकि आर्थिक पर्यावरण सुरक्षित रह सके।

जैन साहित्य में मानसिक पर्यावरण के कई स्थल दृष्टिगोचर होते हैं। इसमें बताए हुए व्यावहारिक जीवन शैली को यदि हम अपने जीवन में अपनायें तो मानसिक पर्यावरण की सुरक्षा स्वत: ही हो जाएगी।

जैन साहित्य में पर्यावरण की उपयोगिता को प्रस्तुत करते हुए धर्म को मनुष्य के लौकिक तथा पारलौकिक सुख की सफलता का कारण बताया गया है। धार्मिक पर्यावरण आत्मिक उन्नति का मार्ग है। यह मानवीय व्यवहार का उचित नियमन एवं नियंत्रण करता है। धर्म ही मनुष्य के सुख का हेतु है। जो गृहस्थ धर्म नहीं करते वे वृद्धवस्था में उसी प्रकार दु:ख प्राप्त करते हैं जैसे कीचड़ में फँसा हुआ बैल। अत: धार्मिक पर्यावरण मानवता का पाठ पढ़ाकर समतामूलक अहिंसा की प्रतिष्ठा करता है और प्राणीमात्र को सुरक्षा प्रदान करने का दृढ़ संकल्प देता है। सामाजिक, राजनैतिक, पारिवारिक, आध्यात्मिक प्रदूषण को दूर करने की दिशा में धार्मिक पर्यावरण की विशुद्धता का महनीय योगदान है। मानव प्रमादी और परावलम्बी बन रहा है। वह कृत्रिमता को महत्त्व देता है, फलस्वरूप पर्यावरण का असंतुलित होना स्वाभाविक है। आज हवा, पानी, भोजन आदि सभी में विकृति है। उसे श्वांस लेने के लिए न तो शुद्ध हवा है और न ही पीने के लिये शुद्ध पानी, न ही खाने के लिए शुद्ध भोजन। क्योंकि वाहनों के प्रयोग, कीटनाशक दवाओं, कृत्रिम खाद का प्रयोग आदि अनेक कारणों से वायु, जल व अन्न प्रदूषित हो गया है।

प्रदूषण का अर्थ है किसी वस्तु में विकार आ जाना। असली में नकली वस्तु मिल जाना अथवा शुद्ध वस्तु का अशुद्ध हो जाना। आज वर्तमान में पर्यावरण प्रदूषण मानव की स्वार्थवृत्ति, लुप्त हुई संवेदनशीलता और भोगवादी प्रवृत्ति आदि के कारण फैल रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदूषण भी दो प्रकार का होता है - बाह्य प्रदूषण आन्तरिक प्रदूषण

१. **बाह्य प्रदूषण** - इसमें जल, वायु, भूमि, ध्वनि प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण आदि हैं।

२. **आन्तरिक या मानसिक प्रदूषण** - व्यसन, पाप, कषाय और दुर्भाव। औद्योगीकरण तथा अन्य मानवीय गतिविधि के फलस्वरूप अब "जल प्रदूषण" की समस्या ने गम्भीर रूप ले लिया है। वर्तमान में रेडियोएक्टिव पदार्थ, धूलकण, सीसा, आर्सेनिक आदि स्वच्छ वायु को प्रदूषित करते हैं। सबसे अधिक वायु प्रदूषण औद्योगिक कारणों से ही होता है। भूमि प्रदूषण का मुख्य स्त्रोत जनसंख्या की वृद्धि है। भू-प्रदूषण की समस्या यथार्थ में ठोस अपशिष्ट के निक्षेपण की समस्या का ही दूसरा नाम है। मृदाक्षरण, मृदा का विभिन्न स्त्रोतों से रासायनिक प्रदूषण, भू-उत्खनन, ज्वालामुखी-उद्‌गार इत्यादि समस्त मानवकृत तथा प्राकृतिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप भूमि प्रदूषण होता है। विभिन्न कृत्रिम साधन हमारे आस-पास के वातावरण में शोरवृद्धि के प्रमुख कारण हैं। ये तीन प्रकार से हैं -

१. उद्योग धन्धों की मशीनें

२. स्थल तथा वायु परिवहन के साधन

३. मनोरंजन के साधन तथा सामाजिक क्रियाकलाप

जैविक नशीले पदार्थों की अपेक्षा रेडियोधर्मी पदार्थ अधिक हानिकारक होते हैं। उर्जा उत्पादक संयंत्रों तथा रेडियो आइसोटोप, औद्योगिक तथा अनुसंधान कार्य रेडियोधर्मी प्रदूषण के मुख्य स्त्रोत हैं जिससे पर्यावरण की गुणवत्ता का विघटन होता है। भौतिक कारणों से ज्यादा हानिकारक हमारा आन्तरिक प्रदूषण है जो प्रकृति की मौलिकता पर प्रहार कर पर्यावरण को चौपट कर रहा है। व्यक्ति का विचार ही मूल है जो भोगवादी संस्कृति की चादर लपेटे अपने सुख के लिए दूसरों के अधिकारों को छीनने में कतई संकोच नहीं कर रहा है। विचारों का सम्प्रेषण और प्रत्यावर्तन एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है जो कर्ता और कर्म दोनों को प्रभावित करता है। प्रकृति की रसमयता और स्वाभाविकता विलुप्त होती जा रही है इसका कारण हमारे मनोविकार हैं। स्वादलोलुपता और विदेशी धनार्जन की भावना से देश में कत्लखानों की वृद्धि हुई है। जो पर्यावरण के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है। मांसाहार जलभाव के लिए भी उत्तरदायी है। कत्लखानों से निकली निरीह पशुओं की चीत्कारें भी भूमण्डल को विक्षोभित करती हैं।

जैनधर्म में मानसिक पर्यावरण के प्रदूषित होने के अनेक कारण बताए गए हैं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यसन वह वृत्ति है जो मानव को निरन्तर उत्तम से जघन्य की ओर ले जाती है। मानव अपने नैतिक लक्ष्य को भूल कर अनैतिक व्यवहारों से दानवता की ओर बढ़ रहा है जिससे वह विभिन्न व्यसनों का दास बनकर वैचित्र्यपूर्ण, शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक दु:खों को आमंत्रित करता है। महान् विवेकी, तर्कशील सुखेच्छु मानव धन खर्च करके विभिन्न प्रकार की आपत्तियों को खरीदता है। मद्य-मांस आदि तामसिक आहार से मानव वैसे ही भावों से आकान्त हो जाता है और वह मानव न होकर दानव हो जाता है। इन व्यसनों के कारण आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार का पर्यावरण प्रदूषित होता है।

प्राणियों को कष्ट देना हिंसा है। हिंसा करना ही प्रदूषण है। प्राणियों को मौत के मुँह में डालना निश्चित ही बड़ा भारी पाप है। मानव धन की प्राप्ति के लिए चौर्य, कपट, लोभ आदि पापों का सेवन करता है। धनार्जन हेतु स्वार्थी बन कर लोग जंगल काटते, आग लगाते, जंगली जानवरों का शिकार आदि पाप कर्म करते हैं। इनसे वन्य जीवन का संतुलन बिगड़ता है और पारिस्थितिकी संबंधी अनेक समस्याएं जन्म लेती हैं। पाप वह है जिससे लोगों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कष्ट हो और उनके जीवन में जिससे बाधा उत्पन्न हो। ध्वनि, वायु, जल आदि का प्रदूषण ये सब ऐसे ही पाप कर्म हैं जिनसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मनुष्यों एवं जीव-जन्तुओं को भारी कष्ट होता है। अत: ये भी पाप हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ इन काषायिक भावों के आक्रान्त होने से मानव के अन्दर हिंसा, छल-कपट और संग्रह की आसुरी प्रवृत्ति दिनोदिन बढ़ती जा रही है। लोभ व्यक्ति की तृष्णा को आसमान छूने के लिए उकसा रहा है। भोगवादी संस्कृति के प्रभाव से वह जितनी वस्तुएं उपयोग में लाता है उसका सहस्त्र गुणा वस्तुओं का संग्रह करने में वह जुटा हुआ है।

जैनधर्म के अनुसार अनुरन्जित योगों की प्रवृत्ति का नाम लेश्या है। यह छ: प्रकार की होती है - कृष्ण, नील, कपोत, पीत, पद्म और शुक्ल। कृष्ण लेश्या वाले व्यक्तियों का मानस अत्यन्त प्रदूषित होता है। उसके आगे-आगे की लेश्या वाले व्यक्तियों का मानसिक प्रदूषण कम होता जाता है और अंतिम शुक्ल लेश्या वाला व्यक्ति कोमल परिणाम वाला होता है। वस्तुत: आज पर्यावरण प्रदूषण और पारिस्थितिकी का असंतुलन विश्वव्यापी समस्या का रूप ले चुका है। इसलिए पर्यावरण की रक्षा करना राष्ट्रीय और मानवीय कर्तव्य है। इसके लिए सामूहिक, समन्वित और शासकीय प्रयासों के साथ-साथ जन-जन को अपना कर्तव्य निभाना चाहिए।

जैन धर्म के श्रावकाचार में पर्यावरण संरक्षण किस प्रकार सहयोगी है उसका वर्णन इस प्रकार है। सर्वप्रथम श्रावकाचार को परिभाषित करते हैं कि - सप्त व्यसन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का त्यागी और अष्ट मूलगुणों का पालन करने वाला श्रावक कहलाता है और उनका आचार ही श्रावकाचार है। श्रावकाचार के अंतर्गत प्रमुख रूप से पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत और ग्यारह प्रतिमाओं का विवेचन है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह इन पाँच व्रतों का पालन करने के कारण इन्हें अणुव्रती कहा जाता है। पांच अणुव्रतों में अहिंसाणुव्रत और परिमाण व्रत में ही सारे अणुव्रत गर्भित हो जाते हैं। चार अणुव्रत अहिंसा रूपी खेत में बाड़ी के समान हैं। अहिंसा के बिना आचार शून्य है। मानवता का कल्याण अहिंसा में ही समाहित है। इसलिए जैन धर्म में अहिंसा का ही सूक्ष्म एवं मौलिक विवेचन मिलता है। अतः पर्यावरण को विशुद्ध रखने के लिए अहिंसा की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। श्रावक संकल्पी हिंसा का त्यागी होता है। वह एकेन्द्रिय जीवों जैसे - पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और वनस्पति का भी संकल्पपूर्वक विराधना नहीं करता है।

जैन धर्म ने व्यक्ति को प्रकृतिस्थ बनाने के लिए ऐसी जीवन पद्धति दी है जो उसकी सुन्दर आध्यात्मिक भाव भूमि तैयार कर देती है। यह भाव भूमि है अहिंसा और अपरिग्रह की - जिस पर चल कर कोई भी व्यक्ति दूसरे को न कष्ट दे सकता है और न अनैतिक मार्ग पर चल सकता है। पर्यावरण को विशुद्ध बनाये रखने में ये दो अंग विशेष साधक माने जाते हैं।

जैनधर्म में शाकाहार को पर्यावरण संरक्षण का आधार माना गया है। यह अहिंसा की महान् प्रतिष्ठा का सरल, सात्विक और स्वास्थ्यवर्धक आहार है जो न केवल बाह्य पर्यावरण को संरक्षित व संवर्द्धित करता है वरन् जीवन में पवित्रता, सद्गुण, सदाचार और संयम की ओर ले जाता है जो "शा" - शान्ति, "का" - कान्ति, "हा" - हार्द्र स्नेह और "र" - रसों या रक्षक का परिचायक है। अर्थात शाकाहार हमें शान्ति, कान्ति, स्नेह और रसों से परिपूर्ण करता है। मनुष्य प्रकृतिप्रदत्त, एक शाकाहारी प्राणी है। इसकी शारीरिक संरचना शाकाहार के अनुकूल है। शाकाहार समरसता और सहअस्तित्व है जो चारित्रिक गुणों पर आधारित एक जीवन प्रक्रिया है। दया और करुणा प्रेम का उपहार है। जिसमें **परस्परोपग्रहोजीवानाम्** का मूल मंत्र निहित है और जो हर प्राणी को प्रकृति और पर्यावरण से जोड़ता है। **जीयो और जीने दो** के उद्घोष में पर्यावरण के प्रति आदरभाव निहित है। शाकाहार में संतुलित आहार के सभी तत्व प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, खनिज लवण और विटामिन्स होते हैं। ये सभी तत्व वनस्पति, अनाज, दाल, दूध और फलों से प्राप्त हो जाते हैं। इससे प्राणी अपनी पूरी आयु सरलता से जी सकता है। इस प्रकार अहिंसा व्रत पर्यावरण संरक्षण का सोपान है।

पर्यावरण को विशुद्ध रखने में अपरिग्रह का भी प्रमुख स्थान है। यह सर्वोदय का अन्यतम अंग है। इसके अनुसार व्यक्ति और समाज परस्पर आश्रित हैं। एक के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहयोग के बिना जीवन का प्रवाह गतिहीन सा हो जाता है। प्रगति सहमूलक होती है संघर्षमूलक नहीं। व्यक्ति के बीच संघर्ष का वातावरण प्रगति के लिए घातक सिद्ध हो सकता है।

जैन धर्म में व्यक्ति को संयम की बात सिखलायी गई है। संयम वास्तव में विचार परिवर्तन की ही दिशा नहीं अपितु विभिन्न ग्रन्थियों पर ध्यान केन्द्रित कर उसके स्राव द्वारा हृदय परिवर्तन की एक दशा भी है। इस तरह वर्तमान युग में जो अशान्ति के कारण हैं उनके लिए "संयम खलु जीवानाम्" का उद्घोष ही शान्ति का एक महत्त्वपूर्ण सन्देश है।

सदाचारी गृहस्थ का सामाजिक जीवन मर्यादित होता है। उसमें संचय की वृत्ति न बढ़े, इसके लिए उसे दिग्व्रत, देशव्रत एवं अनर्थदण्ड व्रत के पालन का निर्देश है। वह दैनिक जीवन में धार्मिक आचरण से विमुख न हो तथा उसमें दान की वृत्ति बनी रहे इसके लिए उसे चार शिक्षाव्रतों - सामायिक, प्रोषधोपवास, भोग-उपभोग परिमाण व्रत और अतिथि संविभाग के पालन का निर्देश है। जब श्रावक इन बारह व्रतों का पालन करने लगता है तब उसके जीवन की धार्मिक यात्रा आगे बढ़ती है। वह अपनी शक्ति और रुचि के अनुसार जीवन में संयम पालने की ओर कदम बढ़ाता है।

घातक वातावरण के निर्माण में सामाजिक विषमता प्रमुख है। जैनधर्म में इस तथ्य की मीमांसा कर अपरिग्रह का उपदेश दिया गया है जिससे सामाजिक प्रदूषण से रक्षा हो सके। परिग्रह की वैचारिक दृष्टि औद्योगिक विकास को गति प्रदान करती है। वर्तमान में असंतोष एवं भविष्य के प्रति निराशा ने व्यक्ति को अधिक परिग्रही बना दिया है। विश्व की प्राकृतिक सम्पदा मर्यादित उपयोग से ही सुरक्षित रह सकती है। उपयोग में नियमन/संरक्षण सिद्धान्त कार्य करता है जबकि उपभोग अन्तहीन और अनन्त होता है। श्रावकाचार व्यक्ति को आध्यात्मिक क्षेत्र की ओर ले जाने के लिए पहले सामाजिक कर्तव्य की ओर खींचता है और व्यक्ति सामाजिक कर्तव्य को पूरा करता है। वह आत्मकल्याण तो करेगा ही साथ ही समाज का भी अधिकतम उपकार करता है। मानवता ही पर्यावरण को सुरक्षित करती है।

जैन श्रमणाचार भी पर्यावरण संरक्षण में अत्यधिक सहायक है। मुनि का आचार ही श्रमणाचार है। वह निवृत्ति मूलक होता है। उसकी सभी क्रियाएं आत्मा के साक्षात्कार में सहायक होती हैं। पांच महाव्रत, चार शिक्षाव्रत, पांच समिति, छह आवश्यक आदि उसकी साधना में प्रमुख हैं। बारह व्रतों के पालन की साधना करता हुआ मुनि ध्यान की उत्कृष्ट अवस्था में पहुचता है। वहां वह उस परम ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है जिससे वह परमात्मा की कोटि में आ सके। मुनि जीवन की इसी कठोर साधना के कारण श्रमणाचार को प्राय: निवृत्तिमूलक एवं व्यक्तिवादी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की संज्ञा दी जाती है। किन्तु इसमें गुणात्मक विकास के साथ-साथ सम्पूर्ण मानव जाति के उत्थान की भावना समाहित होती है। प्राणी मात्र के प्रति रक्षा की भावना निहित होती है। मुनि की जीवनचर्या पर्यावरण को सुरक्षित तथा शुद्धिपरक संयमाचरण को प्रकट करती है। विशुद्ध वातावरण में रहने से ही साधु अच्छी तरह से ज्ञान, ध्यान और तप में संलग्न रह सकते हैं। साधु के अट्ठाईस मूलगुणों में पांच महाव्रत हैं। उनमें अहिंसा और अपरिग्रह महाव्रत प्रकृति से अति दोहन की प्रवृत्ति पर अंकुश रखने का प्रतीक है। दिगम्बर जैन साधु कमण्डलु और पिच्छी रखते हैं जो पर्यावरण संरक्षण के अनुकूल है। कमण्डलु लकड़ी का पात्र होता है। पिच्छी मयूर पंखों से निर्मित होती है उसे साधुजन स्वयं बनाते हैं और सभी लोगों को अपना काम स्वयं करने की प्रेरणा देते हैं। यह पिच्छी इतनी कोमल होती है कि उससे किसी जीव को कष्ट नहीं होता है। साधु के संयम की रक्षा उसी पिच्छी के माध्यम से होती है। वे किसी भी वस्तु को उठाते हैं रखते हैं तो पहले पिच्छी से परिमार्जन कर लेते हैं। पिच्छी और कमण्डलु दोनों ही नष्ट होने पर भूमि में विलीन हो जाते हैं। साधु बिहार में किसी प्रकार के वाहन प्रयोग नहीं करते जिसके फलस्वरूप वे वायु प्रदूषण व ध्वनि प्रदूषण का नियन्त्रण करते हैं और उनके यत्नाचारपूर्वक पद यात्रा से सूक्ष्म जीवों की रक्षा हो जाती है। अतः श्रमण की सम्पूर्ण चर्या ही आन्तरिक एवं बाह्य पर्यावरण के संरक्षण में सहायक है।

जैनधर्म के अनेकान्त और स्याद्वाद सिद्धांत से भी पर्यावरण संरक्षण होता है क्योंकि अनेकान्त द्वारा आज के मानव की वैचारिक समस्या का समाधान हो सकता है। वह संसार के बहुआयामी स्वरूप से परिचित हो जाता है। श्रमणाचार इस दिशा में एक रचनात्मक भूमिका निभा सकता है। नदी शारीरिक मल को दूर करती है। परन्तु सप्तभंगी जिनवाणी मानसिक प्रदूषण को दूर करती है। इस प्रकार अनेकान्त, स्याद्वाद और सप्तभंगी आन्तरिक पर्यावरण संरक्षण में सहायक हैं।[१] आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से सूक्ष्मतम जीव-जीवाणु (वैक्टीरिया) एवं विषाणु (वायरस) हैं। ये जल, थल, नभ में प्रत्येक स्थान पर रहते हैं। माइकोप्लाज्मा भी अत्यन्त सूक्ष्म जीव है। यदि सूक्ष्म जीवों की तुलना जैन धर्म में वर्णित स्थावर जीव एवं निगोद से की जाए तो बहुत समानता मिलेगी। पर्यावरण संरक्षण इन जीवों के संरक्षण से ही संभव है। स्थावर जीवों के प्रति अहिंसा मात्र से पर्यावरण की संरक्षा हो सकती है। पंचविध स्थावर जीव हर क्षण हमारे साथ रहते हैं। उनके प्रति संतुलन (लिमिटेशन) का भाव रखना ही पर्यावरण विज्ञान है।

जैन धर्मानुसार एकेन्द्रिय जीव अपने स्थान पर स्थिर रहने के कारण स्थावर जीव कहलाते हैं। धर्म एवं अधर्म द्रव्य से संबंधित जितने आकाश में जीव और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुद्‌गलों का आना-जाना होता है वह स्थावर लोक है।[२] पंचविध स्थावर जीव स्पर्श ज्ञान द्वारा ही जाने जाते हैं।[३] स्थावर जीव में त्रसत्व भी पाया जाता है। पृथ्वी, जल, और वनस्पति ये तीन स्थावर अर्थात स्थिर योग संबंध के कारण स्थावर कहे जाते हैं परन्तु अग्नि और वायु उन पांच स्थावरों में ऐसे हैं जिनमें चलन क्रिया देखकर व्यवहार से त्रस भी कह देते हैं।[४] पर्यावरणीय घटकों "पृथिव्यपतेजो वायु वनस्पतयः स्थावराः" के अनुसार पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और वनस्पति इन पांच स्थावर जीवों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्थावर जीव के पांच प्रकार हैं -

१. **पृथ्वीकायिक जीव** - पृथ्वी ही शरीर है जिनका, उन्हें पृथ्वीकायिक जीव कहते हैं। जैसे - पर्वत, चट्टान, खनिज, पत्थर आदि। इनके भोगोपभोग की सीमा बनाएं तो धर्म निर्वाह और पर्यावरण संरक्षण ही होगा।

२. **जलकायिक** - जल ही शरीर है जिनका, वे जलकायिक हैं जैसे ओस, बादल, पानी आदि। अनावश्यक पानी मत फेंको, ओस की बूंद को भी पानी की बूंद और स्थावर जीव जानो, यही पर्यावरण का मूल है।

३. **अग्निकायिक** - अग्नि ही शरीर है जिनका उन्हें अग्निकायिक स्थावर जीव कहते हैं, जैसे - अंगारा आदि। जलती आग में पानी की बूंद न डालिए जिससे अग्नि और जलकायिक दोनों जीवों की विराधना हो। आतिशबाजी न छोड़ें और यही शिक्षा आगे की पीढ़ी को दें जिससे वातावरण प्रदूषित न हो।

४. **वायुकायिक** - वायु ही शरीर है जिनका ऐसे जीव वायुकायिक जीव हैं जैसे - आंधी, झंझावत आदि। वायु में किसी प्रकार के प्रदूषण का सम्मिश्रण न हो ऐसा प्रयास करना चाहिए।

५. **वनस्पतिकायिक** - पेड़-पौधे आदि वनस्पतिकायिक जीव हैं। निगोद के जीव भी एकेन्द्रिय हैं। इन्हें वनस्पतिकायिक माना गया है।

वनस्पति के दो भेद हैं - १. प्रत्येक २. साधारण। प्रत्येक वनस्पति वे हैं जिनमें प्रत्येक जीव का अलग-अलग शरीर होता है।[५] साधारण वनस्पति वे हैं जिनमें अनन्त जीवराशि का एक ही शरीर होता है। साधारण जीव में यदि एक जीव का जन्म-मरण होता तो वहां रहने वाले अनन्त जीवों का भी जन्म-मरण होता है।[६] इन वनस्पतिकायिक साधारण वनस्पति जीवों को निगोदिया जीव भी कहा जाता है। निगोदिया जीव साधारण ही होते हैं प्रत्येक नहीं। पर्यावरण और अहिंसा का अटूट संबंध है अतः स्थावर जीवों की रक्षा ही पर्यावरण संरक्षण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्म में पर्यावरण को काफी महत्त्व दिया गया है। तीर्थंकरों ने पर्यावरण संरक्षण और जैविक संतुलन बनाए रखने के लिए सशक्त सिद्धान्तों की स्थापना की जो आज भी विद्यमान हैं। हमें जैन धर्म में निहित मूलभूत पर्यावरण के प्रतिमानों का प्रचार करना चाहिए। जैन धर्म हमें पृथ्वी के छोटे से छोटे प्राणी वनस्पति, सूक्ष्म जीवों की रक्षा एवं सम्मान की प्रेरणा देता है जो कि पर्यावरण संरक्षण के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैनधर्म में पर्यावरण से संबंधित सभी तत्व सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं। साथ ही पर्यावरण के संरक्षण और संवर्द्धन में जिन तत्वों की अहम भूमिका है उनको भी निर्देशित किया गया है। इनका अवलोकन, कर हम उसको सुरक्षित करके सभी तरह से जीवन को सुखमय बना सकते हैं। यदि हम जैनधर्म के सिद्धांतों पर चलें तो पर्यावरण संरक्षण अपने आप हो जाएगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. **भूरामल शास्त्री के साहित्य में पर्यावरण संरक्षण - एक अध्ययन** पृ० ३-१५।

२. **तिलोयपण्णति**, ५.५।

३. **पंचास्तिकाय**, ११०।

४. **पंचास्तिकाय**, १११।

५. **गोम्मटसार**, जीवकाण्ड, गाथा १८६।

६. **सवार्थसिद्धि**, ८.११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण

देवेन्द्र कुमार हिरण*

धर्म आत्मा में जाने का प्रवेश-द्वार है। आत्मा का स्पर्श तब होता है, जब वीतराग-चेतना जागती है। राग-चेतना और द्वेष-चेतना की समाप्ति का क्षण ही वीतराग-चेतना के प्रस्फुटन का क्षण है। जैन-धर्म की सारी साधना वीतराग की साधना है।

"जैन" शब्द का मूल "जिन" है। "जिन" का अर्थ है जीतने वाला या कषायों पर विजय पाने वाला। अपनी कषायों पर विजय पाने वाला अपने आप पर विजय पा लेता है। अत: अपने आपको जीतने वालों का धर्म-जैन धर्म है।

जैन-धर्म के प्रणेता जिन कहलाते हैं। जिन होते हैं - आत्म-विजेता, राग-विजेता, द्वेष-विजेता और मोह-विजेता। जैन परम्परा में "जिन" शब्द की अतिरिक्त प्रतिष्ठा है। "जिन" शब्द को दो अर्थों का संवाहक माना जा सकता है- जिन-ज्ञानी और जिन-विजेता। आवश्यक में ज्ञाता और ज्ञापक रूप में - अर्हतों की स्तुति की गई है।

"जिन" का एक अर्थ है - प्रत्यक्षज्ञानी, अतीन्द्रियज्ञानी। ये तीन प्रकार के होते हैं- १. अवधि ज्ञान जिन, २. मन: पर्यवज्ञान जिन और ३. केवल ज्ञान जिन। इससे भी "जिन" का अर्थ ज्ञाता ही सिद्ध होता है।

जैन-धर्म के प्रणेता सर्वज्ञ और वीतराग होते हैं। वे प्रकाश, शक्ति और आनन्द के अक्षय स्रोत होते हैं। उनकी आन्तरिक शक्तियां - अर्हताएं समग्रता से उद्भाषित हो जाती हैं, इसलिए वे अर्हत् कहलाते हैं।

चैतन्य की अखंड लौ को आवृत करने वाले तत्त्व हैं - मूर्च्छा और अज्ञान। जिसकी आन्तरिक मूर्च्छा का वलय टूट जाता है, उसके ज्ञान का आवरण भी क्षीण हो जाता है। ज्ञान की अखंड ज्योति प्रज्ज्वलित होते ही व्यक्ति सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बन जाता है। वह सत्य को उसकी परिपूर्णता में जानने-देखने लगता है। "जिन" सर्वज्ञ होते हैं, केवली होते हैं। वे वस्तु-जगत् के प्रति प्रियता-अप्रियता की संवेदना रहित, मात्र ज्ञाता-द्रष्टा भाव में अवस्थित रहते हैं।

*ग्रूप बी; पत्र व्यवहार का पता- देवरमण, गंगापुर, जिला-भीलवाड़ा, (राज०) पिन-३११८१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वज्ञ को अनंतचक्षु कहा गया है। उनकी निर्मल ज्ञान-चेतना में अनन्त धर्मात्मक वस्तु समग्रता से प्रतिबिम्बित होती है। इसलिए वे सत्य-द्रष्टा और सत्य के प्रतिपादक होते हैं। वे जन-कल्याण हेतु प्रवचन करते हैं। उनके प्रवचन का उद्देश्य होता है -

१. प्रकाश का अवतरण

२. बन्धन-मुक्ति

३. आनन्द की उपलब्धि

जैन-धर्म बहुत प्राचीन है, वह वेदों की तरह अपौरुषेय या अव्याकृत नहीं है। वह वीतराग-सर्वज्ञ पुरुषों द्वारा प्रणीत है। इस युग के आदि धर्म-प्रवर्तक थे - भगवान् श्री ऋषभदेव।

ऋषभदेव का काल-निर्णय आज की संख्या में नहीं किया जा सकता। वे बहुत प्राचीन हैं। वे युग-प्रवर्तक थे, मानवीय सभ्यता के अन्वेषक थे। वे इस युग के प्रथम राजा बने। लम्बे समय तक राज्य तंत्र का संचालन कर उन्होंने राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्थाओं का सूत्रपात किया। वे मुनि बने, दीर्घकालीन साधना की, घोर तप किया और कैवल्य को प्राप्त हुए। सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बने। धर्मचक्र का प्रवर्तन किया। धर्म-तीर्थ की स्थापना कर तीर्थंकर कहलाए। ऋषभ इस युग के प्रथम तीर्थंकर थे और भगवान् महावीर चौबीसवें तीर्थंकर। जैन-धर्म के बाईस तीर्थंकर प्रागैतिहासिक काल में हुए। पार्श्व और महावीर ऐतिहासिक पुरुष हैं। तीर्थंकर वह होता है जो स्वयं प्रकाशित होकर प्रकाश पथ का निर्माण करता है। वह स्वतंत्र चेतना का स्वामी होता है। अत: किसी दूसरे का अनुगमन या अनुकरण नहीं करता। इसीलिए प्रत्येक तीर्थंकर अपने युग के आदिकर्ता होते हैं। युग-प्रणेता होते हैं। अत: देश और काल की सीमाओं से परे रहकर यह कहा जा सकता है कि जैन-धर्म के प्रणेता तीर्थंकर होते हैं। वे जिन, वीतराग, अर्हत्, सर्वज्ञ आदि रूपों में वंदित-अभिनंदित होते हैं। भगवान् महावीर इस युग के अंतिम तीर्थंकर थे, अत: वर्तमान जैन परम्परा का भगवान् महावीर से गहरा सम्बन्ध है।

जैन धर्म के विभिन्न गुणों के कारण उसके विभिन्न नाम रहे हैं। इसके प्राचीन नाम हैं : निर्ग्रन्थ प्रवचन, अर्हत् धर्म, समता धर्म और श्रमण धर्म। अर्वाचीन नाम है - जिनशासन या जैनधर्म। इनमें भी बहुप्रचलित और बहुपरिचित नाम जैनधर्म ही है। यह नाम भगवान् महावीर के बाद ही प्रचलित हुआ ऐसा उत्तरवर्ती साहित्य के आधार पर सिद्ध होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिन प्रवचन ही जैन-धर्म का मूल आधार है। जिन वाणी पर आस्था रखने वाला तथा उन शिक्षा - पदों का आचरण करने वाला समाज जैन समाज कहलाता है। जैसे बुद्ध द्वारा प्रवर्तित धर्म बौद्ध धर्म, ईसा द्वारा उपदिष्ट धर्म ईसाई धर्म कहलाता है, शिव और विष्णु को इष्ट मानकर चलने वाले शैव और वैष्णव कहलाते हैं, वैसे ही अर्हत् या जिन को इष्ट मानकर चलने वाले जैन कहलाते हैं।

यहां एक बात विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि जैसे बुद्ध, ईसा, शिव या विष्णु व्यक्तित्व-वाचक नाम हैं, वैसे "जिन" या "अर्हत्" शब्द व्यक्ति-विशेष का वाचक नहीं हैं। जैन धर्म में व्यक्ति-पूजा का कोई स्थान नहीं है। वह व्यक्ति की अर्हताओं को, योग्यताओं को मान्य कर, उसकी पूजा में विश्वास रखता है।

जिसके ज्ञान, दर्शन, चारित्र और शक्ति को आवरित करने वाले तत्त्व नष्ट हो जाते हैं, चैतन्य का परम स्वरूप प्रकट हो जाता है, वह कोई भी व्यक्ति अर्हत् की श्रेणी में आ सकता है।

जैन धर्म केवल संप्रदाय और परम्परा ही नहीं, बल्कि अपने आपको जीतने और जानने वालों का धर्म है। इस का प्रमाण है - जैन धर्म का नमस्कार महामंत्र और चतुःशरण सूत्र।

णमो अरिहंताणं - मैं अर्हतों को नमस्कार करता हूँ।

णमो सिद्धाणं - मैं सिद्धों को नमस्कार करता हूँ।

णमो आयरियाणं - मैं आचार्यों को नमस्कार करता हूँ।

णमो उवज्झायाणं - मैं उपाध्यायों को नमस्कार करता हूँ।

णमो लोए सव्व साहूणं - मैं लोक के सब संतों को नमस्कार करता हूँ।

इस नमस्कार महामंत्र में किसी व्यक्ति को नमस्कार नहीं किया गया। अर्हत् सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु - ये साधना की दिशा में प्रस्थित साधकों की उत्तरोत्तर विकसित अवस्थाएं अथवा सिद्धि-प्राप्त आत्माओं की भूमिकाएं हैं। इन पर जो भी आरोहण करता है, वह वंदनीय हो जाता है, नमस्कार महामंत्र के माध्यम से हम अर्हता, सिद्धता, आचार-सम्पन्नता, ज्ञान-सम्पन्नता और साधुता की वंदना करते हैं।

इससे ज्ञात होता है कि जैन-धर्म व्यापक और उदार दृष्टि वाला धर्म है। वह जाति, वर्ण, वर्ग आदि की संकीर्णताओं से सर्वथा मुक्त सार्वभौम धर्म है। यद्यपि जैन-धर्म वर्तमान में मुख्यतः वैश्य वर्ग से जुड़ा हुआ है, पर प्राचीन काल में सभी वर्गों और जातियों के लोग जैन-धर्म के अनुयायी थे। भगवान् महावीर क्षत्रिय थे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनके प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति आदि ब्राह्मण थे। शालिभद्र, धन्ना आदि अणगार वैश्य थे। उनका प्रमुख श्रावक आनन्द किसान था। तपस्वी हरिकेशबल चण्डाल कुल में उत्पन्न थे। आज भी दक्षिण भारत में महाराष्ट्र आदि कई राज्यों में कृषिकार, कुंभकार आदि जैन हैं। आचार्य विनोबा भावे के शब्दों में जैन-धर्म की निजी विशेषताएं हैं-

१. चिंतन में अनाक्रामक

२. आचरण में सहिष्णु और

३. प्रचार-प्रसार में संयमित

काका कालेलकर ने कहा - "जैन-धर्म में विश्वधर्म बनने की क्षमता है। जैन-धर्म महान् है। उसमें आदर्श है - आप्त पुरुष, उसका साधनापथ है - रत्नत्रयी की आराधना और सिद्धांत है - समन्वय प्रधान अनेकान्त वाद।"

अन्य दार्शनिक मान्यताएं हैं - सृष्टि शाश्वत है, सुख और दु:ख का कर्ता व्यक्ति स्वयं है, प्रत्येक पदार्थ उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य-युक्त है तथा मनुष्य जाति एक है।

जैन-धर्म के मुख्य सिद्धान्त हैं -

१. आत्मा का अस्तित्त्व है।

२. उसका पूर्वजन्म एवं पुनर्जन्म है।

३. वह कर्म का कर्ता है।

४. कृत कर्म का भोक्ता है।

५. बन्धन है और उसके हेतु हैं।

६. मोक्ष है और उसके हेतु हैं।

पर्यावरण - संरक्षण :-

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुई औद्योगिक क्रांति के बाद से अब तक वायुमण्डल में कार्बन-डाई-आक्साइड की मात्रा में पचीस प्रतिशत, मीथेन गैस की मात्रा में सौ प्रतिशत और नाइट्रोजन आक्साइड की मात्रा में अठारह प्रतिशत की वृद्धि हुई है। ये गैसें मुख्यत: वातावरण के तापमान में हो रही वृद्धि के लिए जिम्मेदार हैं।

अंटार्कटिका पर किए गए अनुसंधानों से पता चला है कि वायुमण्डल की संरचना के समय से लेकर दो सौ वर्ष पूर्व तक वायुमण्डल की स्थिति संतुलित थी। औद्योगिक क्रांति के बाद वायुमण्डल संरचना में विषैली गैसों का अनुपात बढ़ा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्बन डाई आक्साइड तथा अन्य हानिकारक गैसों का अनुपात बढ़ने से वायुमण्डल में "ग्रीन हाउस" प्रभाव पैदा होता है, जिससे वातावरण का तापमान बढ़ जाता है।

पृथ्वी के वायुमण्डल में अवस्थित सुरक्षा कवच "ओजोन" की सतह में छिद्र हो रहे हैं। वायुमण्डल में ओजोन की एक सतह है जो एक कवच के रूप में पृथ्वी के चारों ओर उसकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण तना हुआ है। ओजोन पृथ्वी से लगभग १५-२० कि०मी० ऊंचाई से ५५ कि०मी० की ऊंचाई तक विद्यमान है। यह स्फटिक के समान पारदर्शी है। वैज्ञानिक भाषा में इसे "ओजोन स्फियर" कहते हैं। सूर्य से आने वाली पराबैगनी किरणों के अवशोषण की इसमें अद्भुत क्षमता है। अपने इसी गुण के कारण यह प्राणी-जगत् को जीवित रखने में वरदान सिद्ध हुई है। इसके नाश होने से पराबैगनी किरणें पृथ्वी की सतह पर पहुंचकर चर्म कैन्सर एवं अंधेपन जैसी बीमारियों का कारण बनेंगी और फसलों का उत्पादन घट जाएगा। विभिन्न प्रयोगशालाओं से किए गए अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि पराबैगनी किरणों से उत्पन्न दुष्परिणाम विश्वव्यापी होगें एवं सम्पूर्ण जीव-जगत् इससे प्रभावित होगा।

ओजोन की सतह के क्षय के कुछ कारण हैं। उन कारणों में भी प्रमुख कारण है व्यक्ति का भौतिकवादी दृष्टिकोण एवं सुख-सुविधायुक्त जीवनयापन की संकुचित प्रवृत्तियां। वैज्ञानिक विश्लेषण के अनुसार ओजोंन की सतह को विघटित करने वाला रसायन है क्लोरोफ्लोरी कार्बन (सी०एफ०सी०) जिसका उपयोग दैनिक जीवन में विभिन्न सुख-सुविधाओं के उपकरणों में होता है। जैसे एयर-कंडीशनर, फ्रीज आदि। अग्निशामक यंत्रों, कीटनाशक दवाइयों, इलेक्ट्रॉनिक्स और उद्योगों में प्रयुक्त रसायन भी इसके लिए कम उत्तरदायी नहीं हैं। तात्पर्य यह है कि आधुनिक सुविधाओं के उपकरण पर्यावरण सुरक्षा में बहुत घातक हैं।

पर्यावरण के असंतुलित होने का एक कारण नाभिकीय विस्फोट भी है। यदि कभी नाभिकीय विस्फोटजनित अणु युद्ध हुआ तो सृष्टि संरचना में बदलाव आ जाएगा। तापमान कहीं कम और कहीं ज्यादा हो जाएगा। हिमखण्ड पिघलने लगेंगे जिसमें समुद्र का जल स्तर बढ़ जाएगा। चारों ओर पानी ही पानी हो जाऐगा। प्रलय **की सी स्थिति उत्पन्न हो जाऐगी।**

नाभिकीय विस्फोट से जो दृश्य उत्पन्न होगा वैसा उल्लेख जैनागम **भगवती सूत्र** में आया है। यद्यपि यह वर्णन परमाणु युद्ध का नहीं है। जैन काल गणना के अनुसार छट्ठे काल में विश्व विचित्र स्थितियों से गुजरेगा। 'समवर्तक वायु चलेगी। यह वायु इतनी तीव्र गति से चलेगी कि पहाड़ भी प्रकम्पित हो जाएंगे। तीव्र आंधियाँ चलेंगी, आकाश धूल से आच्छादित हो जाएगा, चन्द्रमा अति ठंडा एवं सूर्य अति गर्म हो जाने से तीव्र सर्दी एवं तीव्र गर्मी का वातावरण होगा। वर्षा बीमारियां बढ़ाने वाली होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार इस वैज्ञानिक युग में **भगवतीसूत्र** में वर्णित बातें सत्य हो रही हैं। पांचवें काल खण्ड की अवधि इक्कीस हजार वर्ष है। कहीं काल की उदीरणा न हो जाए ? इक्कीस हजार वर्ष के बाद आने वाली स्थिति इक्कसवीं शताब्दी में ही न आ जाए ? क्योंकि वैज्ञानिक घोषणा है - इक्कीसवीं शताब्दी का मध्य दुनिया के लिए भयंकर कष्टदायी होगा। संभव है काल की उदीरणा हो जाए। काल, कर्म उदीरणा में निमित्त बनता है तो हो सकता है, शायद कर्म भी कभी-कभी काल की उदीरणा में निमित्त बन जाये।

अहिंसा और संयम को जीवन शैली में अपनाकर पर्यावरण संकट से बचा जा सकता है। यद्यपि अहिंसा और सयंम एक वस्तु के दो रूप हैं। संयमित जीवन शैली के साथ अहिंसा और असंयमित जीवन शैली के साथ हिंसा जुड़ी हुई रहती है। एक संसारी व्यक्ति पूर्ण अहिंसक नहीं हो सकता। इसलिए भगवान् महावीर ने हिंसा को दो रूप में प्रस्तुत किया है। अर्थ हिंसा एवं अनर्थ हिंसा। एक गृहस्थ पूर्ण रूप से अहिंसक नहीं हो सकता। उसे जीवनयापन करने के लिए हिंसा का सहारा लेना पड़ता है। उसे अर्थ हिंसा (आवश्यक) कहा है। इसे न छोड़ सके तो अनर्थ हिंसा को छोड़े। वर्तमान जीवन शैली का अधिकांश भाग अनर्थ हिंसा से जुड़ा हुआ है। उसे छोड़ने से पर्यावरण के विभिन्न घटकों की सुरक्षा हो सकती है।

अहिंसा केवल पारलौकिक ही नहीं, वह जीवन के हर चरण के साथ जुड़ी हुई है। भगवान् महावीर संभवत: प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने संसार के समस्त जीवों को छ: वर्गों में बांटा - पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय। पृथ्वीकाय में पत्थर, मिट्टी समस्त खनिज पदार्थ धातु आदि; अपकाय में पानी; तेजस्काय में अग्नि; वायुकाय में हवा, वनस्पति काय में हरियाली-पेड़ पौधे, वृक्ष आदि। त्रसकाय में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय जीवों का समावेश है। पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और वनस्पति के जीव एकेन्द्रिय कहलाते हैं। वे सूक्ष्म होते हैं, उन्हें हम आंखों द्वारा नहीं देख सकते हैं। एकेन्द्रिय जीव भी सुख-दु:ख, प्रिय-अप्रिय, हर्ष-शोक आदि वृत्तियों का संवेदन करते हैं। इनकी चेतना अव्यक्त होती है। इनके अस्तित्व को हम अस्वीकार नहीं कर सकते। भगवान् महावीर ने कहा है - इनके अस्तित्व को अस्वीकार करने का अर्थ है अपने अस्तित्व को अस्वीकारना। जंगम, स्थावर, अदृश्य, सूक्ष्म और स्थूल जीवों के अस्तित्व को **स्वीकार करने वाला ही पर्यावरण की सुरक्षा कर सकता है।**

अहिंसा और संयम को हमें व्यावहारिक रूप में स्वीकार करना होगा। अहिंसा का आधार आत्मा है। मनुष्य की आत्मा और एकेन्द्रिय आदि जीवों की आत्मा समान है। मैं जैसे सुख-दु:ख की अनुभूति करता हूँ वैसे ही समस्त प्राणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुख-दु:ख की अनुभूति करते हैं। इसलिए मुझे किसी प्राणी को पीड़ित नहीं करना चाहिये, सताना नहीं चाहिए, उनका अधिकार नहीं छीनना चाहिए, उन्हें नहीं मारना चाहिए। ऐसे विचार आने से जीवन में अहिंसा और संयम का विकास हो सकता है। इन छ: जीव-निकायों को अपनी आत्मा के समान समझे। सभी प्राणियों के साथ मित्रता का व्यवहार करे।

पानी, हवा और वनस्पति पर्यावरण के प्रमुख घटक हैं। आज ये तीनों प्रदूषित हैं। पीने के लिए शुद्ध पानी नहीं है, जीने के लिए प्राणवायु नहीं है और जंगलों को नष्ट किया जा रहा है। प्रतिदिन करोड़ों टन औद्योगिक रसायनयुक्त कचरा, मनुष्य का मल एवं शवों को नदियों में फेंका जा रहा है जिससे नदियों का पानी विषाक्त हो रहा है। दूसरी ओर घरों में पानी का असीमित उपयोग हो रहा है। पानी का मूल्य नहीं समझा जा रहा है। हम पानी के मूल्य को समझें एवं उसका दुरुपयोग न करें, यह जरूरी है।

साबरमती आश्रम के सुरम्य वातावरण में बैठे महात्मा गांधी ने अरुणोदय की पावन बेला में काका कालेलकर से कहा, एक लोटा पानी लाओ। कालेलकर जी पानी लेकर आए। गांधी जी ने उस एक लोटे पानी से हाथ साफ किए, मुँह धोया, पैरों का प्रक्षालन किया और बचे हुए पानी से तौलिए को धो लिया। इस प्रवृति को देखकर काका कालेलकर से रहा नहीं गया, उन्होंने गांधी जी से कहा - महात्माजी आपके सामने विशाल साबरमती नदी बह रही है और आप पानी की इतनी कंजूसी करते हैं ? गांधी जी ने कहा - "साबरमती नदी पर मेरा एकाधिकार नहीं है, देश के करोड़ों व्यक्तियों का अधिकार है। यदि मैं अपनी आवश्यकता से ज्यादा पानी का उपयोग करता हूँ तो मुझे चोरी लगती है। गांधी जी के जीवन का यह प्रसंग हमें संयमयुक्त आचरण की ओर प्रेरित करता है।" कहाँ गांधीजी के आदर्श, कहाँ आज के लोगों की वर्तमान जीवनचर्या। दैनिक क्रिया कलापों में भी संयम को यथोचित स्थान नहीं है।

पानी का नल खुला है, आप दन्त मंजन कर रहे हैं, कितना पानी बेकार जाता है, उसे पुन: बन्द कर पानी को बचा सकते हैं। व्यक्ति की धारणा है शरीर पर ज्यादा पानी डालने से अच्छा स्नान होता है, लेकिन घर्षण से अच्छा स्नान होता है। घर की साफ-सफाई में आज पानी का बहुत ज्यादा अपव्यय हो रहा है। भूमिगत जल के अन्धाधुन्ध दोहन के कारण पानी कम होता जा रहा है। भू-वैज्ञानिक चेतावनी दे रहे हैं कि आगामी पचास वर्षों में जल संकट का सामना करना पड़ेगा। अधिक दोहन के कारण जल स्तर नीचे जा रहा है। सीमा लंघन का परिणाम अंततः दु:खद ही होता है।

श्वांस लेने के लिये आज शुद्ध प्राणवायु (आक्सीजन) भी नहीं है। वायु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदूषण भी एक ज्वलंत समस्या के रूप में उभर कर सामने आ रहा है। पर्यावरण सम्बन्धी एक संस्था "यूनेप" के एक अध्ययन के अनुसार पृथ्वी की कुल पैदा होने वाली कार्बन डाईआक्साइड के कार्बन चक्र में लाने की क्षमता कम पड़ रही है। कार्बन डाईआक्साइड के बढ़ने का यही क्रम रहा तो पृथ्वी पर इसकी मात्रा दुगुनी हो जाएगी।

पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में वनस्पति एवं जंगल वरदान सिद्ध हुए हैं। मनुष्य जीवन वनस्पति पर आधारित है। उससे जीवन की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। वनस्पति एवं वन के विनाश से भारतीय संस्कृति अपंग हो जायेगी। भारतीय संस्कृति तो आरण्यक संस्कृति रही है। आरण्य में रहकर ही ऋषि-महर्षियों ने साधना करके मानव समाज का उत्थान किया है।

पृथ्वी पर उपलब्ध वनस्पति के आवरण को आज का मानव नष्ट करता जा रहा है। सन् १९४७ में हिमालय पर्वत के चौंसठ प्रतिशत भाग में वन आच्छादित थे, वे आज सिर्फ तैंतीस प्रतिशत शेष रहे हैं। चाणक्य के समय में अरावली पर्वतमाला में अस्सी प्रतिशत भाग में वन थे, वे आज सिर्फ छः प्रतिशत शेष बचे हैं। वनों की असीमित कटाई के कारण आज देश में नाम मात्र के वन रहे हैं। जैन आगमों में वनस्पतिकाय-जीवों का एक स्वतंत्र अस्तित्व माना गया है। भगवान् महावीर ने **आचारांगसूत्र** में मनुष्य और वनस्पति की आपस में जो समानताएँ बताई हैं, वे आज वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा प्रमाणित हो चुकी हैं। उन्होंने कहा - मनुष्य जन्मता है, वनस्पति भी जन्मती है। मनुष्य बढ़ता है, वनस्पति भी बढ़ती है। मनुष्य चैतन्ययुक्त है, वनस्पति भी चैतन्ययुक्त है। मनुष्य छिन्न होने से क्लान्त होता है, वनस्पति भी छिन्न होने से क्लान्त होती है। मनुष्य अनित्य है, वनस्पति भी अनित्य है। मनुष्य उपचित और अपचित होता है। वनस्पति भी उपचित और अपचित होती है। मनुष्य विविध अवस्थाओं को प्राप्त होता है, वनस्पति भी विभिन्न अवस्थाओं को प्राप्त होती है।

भगवान् महावीर ने कहा था - देखो, वनस्पति दूसरे जीवों की अपेक्षा तुम्हारे अधिक निकट है। पृथ्वी, अप्, तेजस, वायु आदि के जीवों को समझना कठिन है, किन्तु वनस्पति को समझना आसान है। तुम इसे समझो - इस पर मनन करो। मनन कर अभय-दान दो। आज वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि वनस्पति में क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष आदि के संवेदन होते हैं। सबसे ज्यादा संवेदनशील वनस्पति होती है। हमारे मन में वनस्पति के प्रति प्रेम, सहृदयता के भाव होने चाहिए तभी इसकी सुरक्षा संभव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदूषित पर्यावरण का यह खतरा असंयमित जीवन की देन है। संयम-शून्य जीवन शैली के कारण प्रदूषण का खतरा बढ़ा है। हम संयम के मूल्य को समझें। असंयम अपने आपमें एक बीमारी है जिससे आज सभी पीड़ित हैं। इससे कोई अछूता नहीं है। इसका इलाज संयमरूपी दवा से ही संभव है। संयम से प्रतिरोधक शक्ति का निर्माण होगा और पर्यावरण अपने आप स्वच्छ हो जाएगा। यदि संयम रूपी दवा का सेवन नहीं किया गया तो प्रदूषण का खतरा बढ़ता ही जाएगा। पर्यावरण के संकट का समाधान संयम और अहिंसा से संभव है। संयम और अहिंसा पारलौकिक ही नहीं है। यह जीवन के साथ जुड़ी हुई है। हमारी इच्छाएं, कामनाएं और लालसाएं जितनी असीमत हैं, पदार्थ उतने ही सीमित हैं। उस पर केवल मनुष्य का ही नहीं, सम्पूर्ण जीव-जगत् का अधिकार है। पर्यावरण संतुलन के लिए मानव जाति का दायित्व है कि वह अपनी जीवन-शैली को संयम की ओर अग्रसर करे। भोगवादी संस्कृति के मलिन पक्षों पर अंकुश लगाए। विलासी जीवन के लिए प्रकृति से छेड़खानी (खिलवाड़) करना बन्द करे, तभी पर्यावरण संतुलन एवं जीव मात्र का अस्तित्व सुरक्षित रह सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण

कु० अलका सुराणा*

"जो दुर्गति में जाते प्राणी को सुगति में ले जाए वह धर्म है।"

जैन धर्म से आशय है राग-द्वेष विजेता द्वारा प्रतिपादित धर्म। जैन धर्म के मुख्य सिद्धान्त हैं - सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय व अपरिग्रह। इन सिद्धांतों का पालन करने वाला "जैनी" कहलाता है।

सभी धर्मों ने प्रकृति को माता का स्थान दिया है। प्रकृति के सभी तत्व जीवनदायी हैं अत: हम उनका संरक्षण करके ही उऋण हो सकते हैं।

वैज्ञानिकों ने पर्यावरण को परिभाषित करने के लिए उसे दो शब्दों में बांटा है - परि+आवरण। हमारे चारों ओर का वातावरण जिसमें हम पलते हैं उसे पर्यावरण कहा जाता है। पर्यावरण तीन भागों में बाँटा जा सकता है - भौतिक, सांस्कृतिक और आत्मिक।

भौतिक पर्यावरण में भूमि, वायु, जल व ध्वनि आदि सम्मिलित हैं। प्रात: काल स्वीकार करने वाले चौदह नियम भी भौतिक पर्यावरण संरक्षण के ही एक भाग हैं।

सांस्कृतिक पर्यावरण से आशय है संस्कृति तथा इसके संरक्षण से अभिप्राय है संस्कृति का संरक्षण। नव युवा वर्ग पश्चिमी व भारतीय संस्कृति को लेकर दिग्भ्रमित है। पश्चिमी संस्कृति की चकाचौंध से आकर्षित युवा वर्ग भूलता जा रहा है कि सर्वेन्द्रिय संयम तथा मनोनिग्रह युवा वर्ग की पहचान है। यह विडम्बना है कि बहुमूल्य भारतीय संस्कृति का महत्व भुलाया जा रहा है।

आज विश्व में अनेक धर्म व संस्कृतियां प्रचलित हैं। प्रत्येक धर्म व संस्कृति वातावरण के अनुसार परिवर्तित होती रहती है लेकिन किसी दूसरी संस्कृति के द्वारा किया अतिक्रमण सर्वथा वर्जित माना गया है। आज का मानव स्व संस्कृति की ओर परमुखापेक्षी बनकर रह गया है। जैन धर्म में अपरिग्रह के सिद्धांत को मान्यता प्रदान की गई है। आज के भौतिक युग में इस सिद्धांत की उपयोगिता पर कोई संशय नहीं है। आज का मानव स्वार्थ व तृष्णा की तृप्ति के लिए घृणित से घृणित कार्य करने को तैयार रहता है। वह भूल जाता है कि क्षणिक तृप्ति उसकी क्षुधा को और अधिक

*ग्रूप ए; पत्र व्यवहार का पता - द्वारा श्री गणपत राज सुराणा, ए १६/२१४, चौपासनी आवासन मंडल, जोधपुर (राज०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बढ़ा रही है। इस प्रकार यदि व्यक्ति अपनी तृष्णा का दमन करता है तो वह इस ओर सार्थक प्रयास करता है।

इस प्रकार यदि हम सांस्कृतिक पर्यावरण की बात करते हैं तो इसमें समाज का वातावरण भी सम्मिलित होता है। अत: हमें समाज व संस्कृति के उत्थान के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए क्योंकि -

"व्यक्ति बनेगा स्वस्थ तभी तो, स्वस्थ समाज बनेगा।

सघन स्वार्थ का मूर्च्छा का, उपचार "जिन धर्म" देगा।"

प्राचीन ज्ञानियों ने जीवन को चार अवस्थाओं में विभाजित किया है। इन अवस्थाओं से आश्रमों का उद्गम हुआ और ये आश्रम हैं - ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ तथा संन्यासाश्रम। इन्हीं आश्रमों में प्रमुख आश्रम बताया है ब्रह्मचर्याश्रम को। मानव की आयु को शतायु माना गया है और २५ वर्ष की आयु प्रत्येक आश्रम के लिए निश्चित की गई है।

२५ वर्ष तक प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण रखे। जैन धर्म में भी ब्रह्मचर्य को महत्व दिया गया है। ब्रह्मचर्य की शक्ति महाशक्ति है। ब्रह्मचर्य की शक्ति के कारण ही प्रभु नेमिनाथ के आगे श्रीकृष्ण नतमस्तक हुए थे। सभी श्रमणी व श्रमणी तथा श्रावक व श्राविकाओं के लिए ब्रह्मचर्य का महत्व है।

जैन धर्म में श्रमण व श्रमणी के लिए "ब्रह्मचर्य" चौथा महाव्रत है। भगवान् महावीर ने कहा है -

कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए।

पए पए विसीयंतो, संकप्पस्स वंस गओ।।"

- **दशवैकालिक सूत्र** अध्ययन २. गाथा १.

अर्थात् कामरूपी शत्रु का निवारण करके ही श्रमण धर्म का पालन किया जा सकता है। यदि वह ऐसा नहीं करता तो दु:ख ही पाता है।

अंतिम पर्यावरण का भाग है आत्मिक पर्यावरण। आत्मा एक दर्पण के समान है यदि इसमें मोह, माया, काम, क्रोध, लोभ की धूल लग जाए तो यह न तो आत्म मंथन कर सकती है और न ही आत्मविश्लेषण।

*आत्मा अमर-अजर व शाश्वत है। **गीता** में भी कहा है -*

नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावक:।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत:।।

अध्याय २, श्लोक २३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्यावरण संरक्षण में जैन धर्म के सिद्धांतों का महत्व है। आत्मा के बारे में कहा गया है।

"आत्मानं विजानीहि।"

अर्थात् आपने आपको व अपनी आत्मा को पहचानो। आत्मा तीन प्रकार की होती है - (१) बाह्य आत्मा (२) अंतरात्मा (३) परमात्मा।

आचारांगसूत्र में कहा है

"आयोवादी, लोयवादी, कम्मावादी, किरियावादी।"

अर्थात् आत्मा शाश्वत है इस तथ्य को मानने वाला आत्मवादी, लोकवादी कर्मवादी व क्रियावादी है। इसलिए आत्म विश्लेषण करके ही हम आत्मिक पर्यावरण को तुष्ट कर सकते हैं। ज्ञानियों ने अंतरात्मा को "उत्तम", "मध्यम" व "जघन्य" इन तीन भागों में बांटा है।

परमात्मा के दो भेद हैं सकल व विकल। सकल परमात्मा में केवली सम्मिलित हैं जबकि विकल परमात्मा में सर्वसिद्ध श्री अरिहंत भगवान् हैं।

उक्त तीनों प्रकार के पर्यावरण तथा उनके संरक्षण में जैन धर्म का योगदान रहा है। यदि सभी व्यक्ति कषाय रहित, व्यसन मुक्त जीवन, अनैतिक आचरण को छोड़कर, आत्मिक शक्ति जाग्रत करके शुद्ध संयम का पालन करें तो वे सर्व दुःखों से मुक्ति पा सकते हैं।

शुद्ध संयम से तात्पर्य है - अठारह पापों - प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, मृषावाद व मिथ्या दर्शन शल्य का त्याग।

इस प्रकार पर्यावरण संरक्षण के लिए आवश्यकता है सच्चे श्रावक बनने की। प्राणिमात्र के प्रति दया की भावना रखने की। सबको समान मानने की। इसलिए जीवन के प्रति दया रखने का भाव सभी धर्मों में कहा गया है। जैन धर्म में ८४ लाख जीवों से क्षमा याचना की जाती है और कहा जाता है -

खम्मामि सव्वजीवाणं,
सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु,
वेरं मज्झं न केण वि।।

✸

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण

श्रीमती सुधा जैन*

प्रस्तावना

जैन धर्म क्या है ? जैन शब्द की विभिन्न परिभाषायें हैं, जो जितेन्द्रिय होता है इन्द्रियों को जीतने वाला होता है वह जिन कहलाता है और उसके अनुयायी जैन कहलाते हैं। जैन धर्म वस्तुत: सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह के सिद्धान्तों का प्रवर्तक, प्रचारक व पालक है।

कथनी करनी एक सी करुणापूर्ण विचार,
हरियाली सा शांतिमय जीने का व्यवहार।
ज्यों निसर्ग में स्वर्ग सी होती उज्ज्वल धूप,
ऐसा ही आलोकमय होता जैनाचार।।

इन्द्रियों को नियन्त्रित रखना, क्योंकि अश्व के समान वेगवती इन्द्रियों पर नियन्त्रण व काम, क्रोध, लोभ, मोह इन चार कषायों पर विजयपताका फहरानेवाला ही सच्चा मानव है, वही जैन है। जीयो और जीने दो, सत्य ही साधना है, माता-पिता तीर्थ स्वरूप हैं, संयम ही साधना का सौन्दर्य है, जहाँ इन भावनाओं को ध्यान में रखकर आचरण किया जाता है, वही जैन धर्म है। जैन धर्म अन्धविश्वासों पर आधारित नहीं है। उसमें न तो अन्धानुकरण है, न ही मूढ़ता। जैन धर्म सम्यक् श्रद्धा और ज्ञान पर आधारित है।

यदि हम वर्तमान में भारतीय क्षितिज पर उभरे दर्शनों का सांगोपांग अध्ययन करें तो पायेंगे कि जैन धर्म के विकास का आधार ज्ञान है। जैन धर्म में महाव्रत, संयम, तप, नियम की आचार संहिता है, धर्म को सुख रूपी फल का बीज कहा गया है।

पर्यावरण क्या है

हमारे चारों ओर जो परिवेश है, वातावरण है, वही पर्यावरण कहलाता है। पर्यावरण शब्द परि+आवरण शब्दों से मिलकर बना है, पर्यावरण के अन्तर्गत वह

*ग्रूप बी; पत्र व्यवहार का पता - द्वारा श्री श्रीमल जैन, २७४, वसंत विहार कालोनी, कोट रोड, धार (म०प्र०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सबकुछ आ जाता है, जो हमारे पास मौजूद है। जैसे - पृथ्वी, जल, आकाश, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, सूक्ष्म व बादर जीव तथा भू-गर्भ के खनिज। यह पर्यावरण दो प्रकार का है, नैसर्गिक व कृत्रिम। हमारा पर्यावरण हमारे जीवन का मूल तत्व है। मनुष्य ने जब जन्म लिया, तब चारों ओर स्वच्छ वायु, उज्जवल प्रकाश, निर्मल जल व प्रकृति की सुन्दर हरीतिमा के दर्शन किये, किन्तु धीरे-धीरे मानव के मन में प्रकृति पर शासन करने की लालसा जागी, जिसके कारण प्राकृतिक संतुलन बिगड़ गया व पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो गई है।

वैज्ञानिकों के अनुसार पर्यावरण के चार प्रकार हैं :-

भूमण्डलीय पर्यावरण, जलमण्डलीय पर्यावरण, वायुमण्डलीय पर्यावरण और जीवमण्डलीय पर्यावरण।

आज हम दृष्टिपात करें तो देखेंगे कि सर्वत्र पर्यावरण में प्रदूषण फैल गया है, आज प्रकृति का कोई भी कोना इसके प्रहार से बच नहीं पाया है और इसका सम्पूर्ण उत्तरदयित्व मानव का है।

आज के इस प्रदूषित होते पर्यावरण की रक्षा का प्रश्न मानव समाज की ज्वलन्त समस्या है। जैन धर्म के मुख्य सिद्धान्त विज्ञान के आधार पर निर्मित हैं। आज सम्पूर्ण मानव जाति मात्र जैन धर्म पर चलकर ही पर्यावरण की रक्षा कर सकती है। इस संबंध में निम्न बिन्दुओं को आधार मानकर अपनी बात को स्पष्ट किया जा सकता है।

अहिंसा व पर्यावरण संरक्षण

जैन धर्म में अहिंसा को बहुत महत्व दिया गया है, अहिंसा परमोधर्मः। सभी को अहिंसामय जीवन जीकर पर्यावरण की शुद्धता को बनाये रखने में सहयोग देना है। **आचारांगसूत्र** में भी वनस्पति को सजीव एवं सुख-दुःख का अनुभव करने वाला बताया गया है।

धरा सौंपती हमें हर एक पल स्वर्गोपम उपहार
पंछी और पशु इस धरती के अमूल्य शृंगार।
करुणनिधि ने हमें बताया धर्म अहिंसा
इसे निभायें निर्भय होकर पालें जैनाचार।

अतः आत्मवत् सर्वभूतेषु मानकर अहिंसारूपी अस्त्र से पर्यावरण की रक्षा कर सकते हैं। महावीर ने यही कहा है कि प्रत्येक प्राणी षट्कायिक जीवों की रक्षा करे। श्रावक-श्राविकायें भी प्रथम अणुव्रत में संकल्पी हिंसा का परित्याग करते हैं। अहिंसा जैन धर्म की आत्मा है और यही है पर्यावरण की रक्षा का एकमेव उपाय।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपरिग्रह और पर्यावरण संरक्षण

आज के युग में अति लालसा की भूख से ही संग्रहवृत्ति को बल मिल रहा है जिसकी पूर्ति में ही पर्यावरण का संतुलन बिगड़ रहा है। मनुष्य की बढ़ती इच्छायें और अभिलाषायें ही पर्यावरण को बिगाड़ रही हैं।

जैन धर्म का अपरिग्रह सिद्धान्त-अर्थात् किसी भी वस्तु का अधिक संग्रह नहीं। आवश्यकतायें कम और कम से कम। यही जैन धर्म की जीवनशैली है और इसी अपरिग्रह को अपनाकर हम प्रकृति के अतिदोहन पर अंकुश लगा सकते हैं। स्वाद, मनोरंजन, अज्ञानता, लोभ आदि के कारण मानव ने दुर्लभ वन्य जीवों का नाश किया, जीव-जन्तुओं की दुर्लभ प्रजातियाँ विलुप्त हो गईं। लालची मानव अपनी तिजोरियाँ भरने में लगे हैं, वनों का दोहन कर रहे हैं। अत: जैन धर्म के अपरिग्रह के सिद्धान्त को अपना लिया जावे तो विश्व को पर्यावरण संरक्षण की चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी।

सप्त कुव्यसन त्याग और पर्यावरण संरक्षण

वही जैनी कहलाता है, जो सप्त कुव्यसन का त्यागी है। जुआ, मांस, मदिरा, चोरी, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन और शिकार - ये सात व्यसन अपनाने वाले दुर्गति में जाते हैं और इनका त्याग करने वाला व्यक्ति अपने जीवन का कल्याण करता है। इस प्रकार वह स्वत: ही पर्यावरण के संवर्धन में सहयोग करता है। मांस सेवन के त्याग से जलीय व वन्य जीवों की हिंसा रुकती है।

शाकाहार का सेवन ही आहार शुद्धि है और आहार शुद्धि एवं पर्यावरण का जीवन्त संबंध है।

साध्वाचार व पर्यावरण संरक्षण

हमारी श्रमण संस्कृति शुद्ध पर्यावरण का जीता-जागता स्वरूप है। जैन साधु-साध्वियों की तो पूरी जीवनचर्या ही पर्यावरण संरक्षक होती है। पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति के पालन करने वाले मुनिराज तीन करण व तीन योग से समस्त पापों का त्याग करते हैं, पूरा जीवन यत्नापूर्वक जीवन जीने का संकल्प लेते हैं। उनके जीवन की चर्या ही समस्त जीवों को अभय दान देने वाली होती है और वे इस प्रकार अपने आचार से पर्यावरण की रक्षा करने का अनमोल संदेश देते हैं।

श्रावक जीवन व पर्यावरण संरक्षण

जैन श्रावक बारह व्रतों - पांच अणुव्रत - अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह व ब्रह्मचर्य का पालन करता है। तीन गुणव्रत - दिशाव्रत, उपभोग-परिभोग वृत्त व अनर्थ दण्ड। जैन धर्म में ऐसे व्यापार को त्याज्य माना गया है - जैसे, जंगल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कटवाना, जमीन खुदवाना, विषैली वस्तु का व्यापार। इनके त्याग से पर्यावरण के संवर्धन में सहयोग मिलता है।

शाकाहार और पर्यावरण संरक्षण

जैन मनीषियों के अनुसार - जो जीवन तथा अनुशासन में सहायक हो, जो पर्यावरण संवर्धन में सहयोग दे, जो मादकता उत्पन्न न करे, कर्तव्य के प्रति अवहेलना भाव न लाये वही सात्विक भाव है और इसका मूल शाकाहार है।

शाकाहार से हम स्वास्थ्य को भी अच्छा रख सकते हैं।

''शाकाहारी सदा सुखदायी जीओ और जीने दो भाई''

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह सिद्ध हो चुका है कि मांसाहार प्रकृति के विपरीत आहार है।

करुणा ही आत्मा का स्वभाव है। जन-जन में शाकाहार आचरणीय बन कर ही पर्यावरण स्वच्छ रख सकता है। इससे जल संकट की समस्या का समाधान भी सम्भव है। क्योंकि मांस के उत्पादन में अधिक जल व अनाज के उत्पादन में कम जल लगता है। तेजी से बढ़ रहे कत्लखानों ने पर्यावरण को प्रदूषित कर दिया है और इन मूक पशुओं की हाहाकार एवं चीत्कार प्राकृतिक आपदाओं को निमन्त्रण दे रही है।

रात्रि भोजन त्याग व पर्यावरण संरक्षण

जैन धर्म में रात्रि भोजन का निषेध है, यह महापाप और घोर नर्क का द्वार है। अनेकों अदृश जीव सूर्यास्त बाद ही विचरण करते हैं, अतः रात्रि में भोजन न करके ही हम इन जीवों के प्राण और अपने स्वास्थ्य की रक्षा भी करते हैं। शास्त्र कहते हैं भोजन तभी करना जब वह पच सके - रात्रि को भोजन करने से अपच होता है जो अन्न को व्याधि में बदल देता है और अजीर्ण से ही जीवन व्यर्थ हो जाता है। सूर्य के प्रकाश में भोजन बनाना व सूर्य के प्रकाश में खाना उसे प्रदूषण से मुक्त और पर्यावरण को भी प्रदूषित होने से बचाना है।

जीयो और जीने दो तथा पर्यावरण संरक्षण

आचार्य उमास्वाति ने **तत्वार्थसूत्र** में कहा है कि - परस्परोपग्रहोजीवानाम्- अर्थात् एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय सभी जीव एक दूसरे का सहयोग करते हैं। विकास का मार्ग भी हिंसा या विनाश में नहीं अपितु सहकार में सन्निहित है।

चींटी से लेकर हाथी, सबको अपना जीवन है प्यारा,
जीयो और जीने दो, यही हमारा है नारा।

यदि हम किसी को जीवन नहीं दे सकते हैं तो उसका जीवन ले भी नहीं सकते हैं। जैन धर्म का यह सिद्धान्त पर्यावरण के संरक्षण का सर्वोत्कृष्ट उपाय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयम और पर्यावरण संरक्षण

श्रमण भगवान् महावीर ने **दशवैकालिकसूत्र** के पहले अध्याय में कहा है कि - धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो। अहिंसा, संयम और तप उत्कृष्ट धर्म है। जैन धर्म में संयम को सर्वश्रेष्ठ तप कहा गया है। यदि सही दृष्टिकोण से देखा जाये तो असंयम व अनियन्त्रित भोगवाद ही पर्यावरण के संकट के लिये जिम्मेदार हैं। जब तक हम जैनाचार से परिपूरित संयम आधारित जीवन नहीं जी पाते हैं, पर्यावरण के लिये संकट बना ही रहेगा। यह संयमित आचरण वस्तुओं व सुविधाओं को अपनाने में भी रहना चाहिये।

क्षमा, सहृदयता, मानवता और पर्यावरण संरक्षण

जैनाचार में क्षमा को वीरों का भूषण कहा गया है, जब यही क्षमा परिवार में, समाज में, विश्व में फैल जाती हैं तो विश्व शांति का मूल मंत्र मिल जाता है और जब विश्व में घृणा, असुरक्षा, द्वेष व भय का स्थान क्षमा, सहृदयता और मानवता ले लेती है तो अपने आप ही हथियारों की दौड़, अणु-परमाणु बमों का विस्तार, युद्ध, आंतरिक कलह आदि रुक जाते हैं और फिर पर्यावरण संरक्षण स्वत: हो जाता है। हमें इस तथ्य को समझना है कि - क्षमा ही विश्व मैत्री का मूल मंत्र और पर्यावरण संरक्षण का अस्त्र है।

वस्तुत जैन धर्म पर व्यापक दृष्टिकोण से विचार करने पर हम पाते हैं कि जैनों का पूरा आचरण ही पर्यावरण को संकटों से बचाने वाला है। प्रमुख जीवनचर्या और पर्यावरण के कुछ बिन्दु इस प्रकार हैं :-

१) जल को बहुत सीमित मात्रा में उपयोग करने के निर्देश हैं, पानी की एक बूंद में भी असंख्यात जीव हैं, सन्त-सतियों के लिये तो सचित्त जल का त्याग है ही, गृहस्थ को भी बिना छाने पानी का उपयोग नहीं करना है। पानी का उपयोग घी से भी अधिक सावधानी से करना चाहिये। अत: जैनों की इस कार्यशैली से पता लगता है कि पर्यावरण संरक्षण से उनका निकट का संबंध है।

२) जैनियों के लिये व्यवसाय की शुद्धता और पवित्रता अनिवार्य है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने **उपासकदशांगसूत्र** और **आवश्यकसूत्र** में भी जैन गृहस्थों के लिये पन्द्रह कर्मादानों के त्याग का निर्देश है। जिस व्यवसाय में अधिक धुआँ हो जैसे - वनों को काटना, आग लगाना, इनसे वनस्पति व अन्य जीवों की हिंसा होती है तथा पर्यावरण प्रदूषित होता है।

३) जैन धर्म में हरित वनस्पति को तोड़ने, काटने निषेध है, साधु को तो उसके स्पर्श तक का निषेध है। जैनों को कन्दमूल खाने की मनाही है, इसका अभिप्राय यह है कि अगर हम जड़ों का ही भक्षण करेंगे तो पौधों का अस्तित्व नष्ट हो जावेगा और पर्यावरण प्रदूषित होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४) वायु प्रदूषण के बारे में भी जैन धर्म सजग है, जैनों में मुख वस्त्रिका बांधने के पीछे भी सूक्ष्म दृष्टि यही है कि वायु, सूक्ष्म जीव व रज-कण का प्रवेश न हो सके। जैनाचार्य इस विषय में सजग थे और अपनी श्वांस को भी दूषित न कर पर्यावरण को भी प्रदूषित होने से बचाते थे।

५) ध्वनि प्रदूषण अर्थात् अवांछित शोर अनिष्टकारक है, हानिकारक है। जैनाचार में साधु-सन्तों के लिये वाहन में बैठना ही निषिद्ध है, वे इसीलिये पदयात्रा करते हैं और गृहस्थ के लिये भी निर्धारित १४ नियमों के अन्तर्गत वाहन उपयोग की मर्यादा है।

६) सन्त-सतियाँ यह प्रतिज्ञा दिलाते हैं कि स्नान में एक बाल्टी से अधिक पानी का प्रयोग नहीं करना चाहिये। यह नियम भले ही हमें हास्यास्पद लगे पर आज जल संकट को देखते हुए इस बात से कोई भी इंकार नहीं कर सकता है।

७) प्राकृतिक दोहन के सभी कार्य महारम्भ की श्रेणी में हैं व नरक में जाने के चार कारणों में से एक हैं। अत: महारम्भ का त्याग करके ही प्रकृति व प्राणियों के विनाश से बचा जा सकता है।

८) जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकर अशोक वृक्ष के नीचे बैठकर ही उपदेश देते थे, इसके पीछे प्रकृति व पर्यावरण के प्रति उनका प्रेम व सजगता प्रकट होती है और उनके प्रतीक चिन्ह भी पर्यावरण के संरक्षण को अपने में समेटे हुए हैं।

उक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण विश्व को शान्ति, अहिंसा, मैत्री व प्रेम का सन्देश देने वाला धर्म जैन धर्म है। इसका प्रत्येक आचार नीतिसंगत, धर्मसंगत, वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर खरा व पर्यावरण को संरक्षण देने वाला है।

यह एक विडम्बना ही है कि महावीर, गौतम, राम, कृष्ण, गांधी व गुरुनानक की इस अंहिसा प्रधान देवधरा पर आज स्थिति बड़ी दयनीय व विचारणीय है, विश्व सभ्यता-संस्कृति में अग्रणी, शस्य श्यामला, गंगा-यमुना की धारिणी इस तपोभूमि में सूर्य की पहली किरण के साथ लाखों जीवों की हत्याकर पर्यावरण के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है और अहिंसा प्रधान इस देवधरा पर हिंसा का जो तांडव हो रहा है, इसे रोकने हेतु हमें कुछ संकल्प लेने होंगे।

१) पर्यावरण संरक्षण व प्रदूषण को रोकने के लिये परस्पर सक्रिय सहयोग करना होगा।

२) दैनिक व्यवहार में पोलिथीन के बैगों के प्रयोगों को हतोत्साहित करना होगा।

३) बूचड़खानों का विरोध करना होगा।

४) शाकाहारी बनना होगा।

५) मांस निर्यात का विरोध करना होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६) राष्ट्रीय हितों की रक्षा व पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में रखकर ही अपनी आजीविका चलाना होगा।

ये संकल्प कोई कठिन नहीं हैं, यह शताब्दी खुशनुमा हो या धुंध भरी, यह हमको ही तय करना है।

जल, जंगल, जमीन ये तीन पर्यावरण के आधार हैं। जैन धर्म में इनके पोषण और संयमपूर्वक उपयोग का व्यापक और विविध रूपों में उल्लेख है।

हमारे देश के ४१वें संविधान संशोधन द्वारा प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह प्राकृतिक पर्यावरण जिसके अन्तर्गत वन, झील, वन्य जीव आदि हैं, उनकी रक्षा करे व पर्यावरण संवर्धन में सहयोग देवे।

वस्तुतः हमें वही करना है कि जो हमारे जैनाचार हैं, हम उनके अनुसार आचरण करें। जो जैन धर्म का पालन करता है, वह पर्यावरण संतुलन का पोषक व समर्थक है। इस प्रकार जैन धर्म के सिद्धान्त ही प्रकृति के सन्तुलन व पर्यावरण का संरक्षण कर सकते हैं।

अगर मानव प्रकृति के साथ खिलवाड़ करता है, पर्यावरण को प्रदूषित करता है, तो समझ लीजिये, प्रकृति को भी हमें नष्ट करना आता है।

अतः अपने जीवन को धर्म से परिपूरित कीजिये, संसार में बनी हर चीज का उपयोग सोच समझ कर कीजिये।

और अन्त में

यही अहिंसक है व्यवहार,
सबसे प्रीत दया और प्यार।
पेड़ लगाओ, प्राण बचाओ,
जीव दया का व्रत अपनाओ।
धुआँ-धुआँ, आकाश भरेंगे,
अपना सत्यानाश करेंगे।
पृथ्वी को क्यों नर्क बनायें,
वहाँ गंदगी न फैलायें।
अमृत जैसा जल अनमोल,
एक बूंद भी व्यर्थ न ढोल।
जैन धर्म है महान् ----
पर्यावरण संरक्षण का है यही अभियान।

इतिशुभम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर एवं गौतम बुद्ध पर्यन्त श्रमण परम्परा विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी सम्पन्न

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी एवं उत्तर प्रदेश जैन विद्या शोध संस्थान, लखनऊ के संयुक्त तत्त्वावधान में पार्श्वनाथ विद्यापीठ के सभागार में दि० २६-२८ अप्रैल २००३ को **महावीर एवं गौतम बुद्ध पर्यन्त श्रमण परम्परा** विषयक तीन दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। दि० २६ अप्रैल को संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र का प्रारम्भ संस्थान में अध्ययनार्थ विराजित खरतरगच्छीय मुनि महेन्द्र सागर जी एवं मुनि मनीष सागर जी के मंगलाचरण से हुआ। इस अवसर पर कु० इन्दु जैन ने सरस्वती वन्दना की भावपूर्ण प्रस्तुति की। उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता विख्यात साहित्य समीक्षक प्रो० राममूर्ति त्रिपाठी ने की। इस अवसर पर महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ के कुलपति प्रो० सुरेन्द्र सिंह मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। इस संगोष्ठी में विशिष्ट अतिथि के रूप में प्रो० अंगनेलाल - पूर्व कुलपति - डॉ० राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय; सुप्रसिद्ध कला मर्मज्ञ प्रो० आर०सी० शर्मा, पूर्व निदेशक - राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली एवं आचार्य - ज्ञान प्रवाह - वाराणसी; प्रो० सागरमल जैन, मंत्री - पार्श्वनाथ विद्यापीठ आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही। कार्यक्रम का संचालन विद्यापीठ के वरिष्ठ प्रवक्ता डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय ने किया। पार्श्वनाथ विद्यापीठ के निदेशक प्रो० महेश्वरी प्रसाद जी ने संस्थान का परिचय देते हुए संगोष्ठी का विषय प्रवर्तन कर आगन्तुक अतिथियों का स्वागत किया। तत्पश्चात् डॉ० योगेन्द्र सिंह ने उत्तर प्रदेश जैन विद्या शोध संस्थान, लखनऊ का परिचय देते हुए अपनी संस्था की ओर से संगोष्ठी में आगन्तुक विद्वानों का स्वागत किया। प्रो० सागरमल जैन ने संगोष्ठी का मुख्य आलेख प्रस्तुत करते हुए बतलाया कि भारतीय संस्कृति एक समन्वित संस्कृति है। इसकी संरचना में वैदिक धारा और श्रमण धारा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वैदिक धारा का प्रतिनिधित्व वर्तमान में हिन्दू धर्म कर रहा है और श्रमण धारा का जैन एवं बौद्ध धर्म। दोनों ही संस्कृतियों का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ा है। आज हिन्दू धर्म न तो शुद्धरूप से वैदिक परम्परा का अनुयायी है और न ही जैन और बौद्ध धर्म विशुद्ध रूप से श्रमण परम्परा का। दोनों ही परम्पराओं ने एक दूसरे से बहुत कुछ ग्रहण किया है। आज चाहे हिन्दू धर्म हो अथवा जैन और बौद्ध धर्म हो, ये सभी अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्तमान रूप में वैदिक और श्रमण संस्कृति के समन्वित रूप हैं। अपने उद्बोधन में प्रो० सुरेन्द्र सिंह ने श्रमण परम्परा की प्राचीनता, बौद्ध-जैन-आजीवक - आदि विभिन्न धाराओं में उसके विकास और भारतीय संस्कृति में उसके योगदान पर प्रकाश डाला। अध्यक्षीय उद्बोधन में प्रो० राममूर्ति त्रिपाठी ने कहा कि भारत में आध्यात्म की दो धारायें बहुत प्राचीन हैं - श्रमण और वैदिक। ये दोनों एक ही वृक्ष की दो शाखायें हैं। इनका भेद जातीय नहीं अपितु सैद्धान्तिक है। सामान्यतः यह माना जाता है कि श्रमण धारा का नेतृत्त्व क्षत्रिय कर रहे थे और वैदिक धारा का ब्राह्मण, फिर भी बहुत सारे ब्राह्मण श्रमण परम्परा में चल रहे थे और बहुत सारे क्षत्रिय वैदिक धारा में। संसार त्याग की परम्परा का अधिक सम्बन्ध क्षत्रियों से मूलतः न होकर ऐसे परिव्राजक सम्प्रदायों में मिलता है जिनकी सामान्य आख्या श्रमण थी। वैदिक परम्परा में यत्र-तत्र मुनियों - श्रमणों के उल्लेख मिलते हैं और यही अधिक संभाव्य है कि श्रमणों की अवैदिक धारा वैदिक धारा के साथ-साथ प्रचलित रही। इसका ऐतिहासिक स्तर पर उन्मेष वैदिक काल के अंतिम युग में हुआ। इस धारा का मूल सिन्धु सभ्यता के योगियों से संभव है। आगे उन्होंने श्रमण परम्परा की सभी मुख्य धाराओं की विस्तृत चर्चा की।

इस सत्र में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, स्थानीय विभिन्न महाविद्यालयों के प्राध्यापक एवं शोध छात्र और देश के विभिन्न भागों से पधारे विद्वान् उपस्थित थे। इस अवसर पर वाराणसी के जैन समाज के गणमान्यजनों की उपस्थिति भी उल्लेखनीय रही।

तीन दिवसीय इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में कुल नौ शैक्षणिक सत्र हुए जिनमें कुल ४३ शोध पत्रों का वाचन हुआ। संगोष्ठी में लगभग ५० विद्वानों ने अपने-अपने शोधपत्र भेजे, किन्तु उनमें से कुछ यहाँ उपस्थित न हो सके। संगोष्ठी के विभिन्न शैक्षणिक सत्रों में पढ़े गये शोध आलेखों और उनके विद्वान् लेखकों का विवरण इस प्रकार है :

महावीर और गौतम बुद्ध पर्यन्त श्रमण परम्परा

२६-२८ अप्रैल २००३

प्रथम सत्र - अपराह्न ३ बजे से सायं ४.३० बजे तक

अध्यक्षता - प्रो० सच्चिदानन्द श्रीवास्तव, गोरखपुर

१. डॉ० सीताराम दुबे, उज्जैन - बौद्धसंघ एवं उसका बुद्धकालीन विकास

२. डॉ० इरावती, वाराणसी - Śramaṇa Tradition and theatre

३. डॉ० वशिष्ठ नारायण सिन्हा - महावीर पूर्व वैदिक एवं जैन परम्परायें :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	वाराणसी		एक अध्ययन
४.	डॉ० सुधीर कुमार राय वाराणसी	-	यज्ञ संस्था : गौतम बुद्ध की दृष्टि में

द्वितीय सत्र - दि० २६ अप्रैल २००३
सायं ४.४५ बजे से ६.३० बजे तक

अध्यक्षता - प्रो० सच्चिदानन्द श्रीवास्तव, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

१.	डॉ० (श्रीमती) प्रभा अग्रवाल- वाराणसी		वैदिक, बौद्ध एवं जैन साहित्य में प्रतिबिम्बित श्रमण परम्परा
२.	डॉ० (श्रीमती) रेखा चतुर्वेदी- गोरखपुर		श्रमण परम्परा का सातत्य
३.	डॉ० विपुला दुबे गोरखपुर	-	संचरणशीलता एवं प्राणोपासना के विशेष संदर्भ में श्रमण परम्परा
४.	डॉ० मनीषा सिन्हा वाराणसी	-	महावीर एवं बुद्ध का वर्षावास

तृतीय सत्र - २७ अप्रैल २००३
९.०० बजे से ११.०० बजे तक

अध्यक्षता - प्रो० सागरमल जैन

१.	कर्नल डी०एस०बया उदयपुर	-	Jain Śramaṇa Tradition from Ādinātha to Pārshwanātha.
२.	डॉ० नन्दलाल जैन रीवाँ	-	Śramaṇa Tradition of Mahāvīra.
३.	डॉ० अशोक कुमार सिंह वाराणसी	-	Sādhanā of Mahāvīra as depicted in Upadhāna Sūtra
४.	डॉ० विनय कुमार गोरखपुर	-	जैन श्रमण अवधारणा : सूत्रकृतांग के विशेष संदर्भ में
५.	डॉ० सत्तन कुमार सिंह गोरखपुर	-	जैनधर्म में 'अर्हत्' शब्द का अर्थ विकास
६.	डॉ० नीतू द्विवेदी गोरखपुर	-	श्रमण आचार व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ सत्र - २७ अप्रैल २००३
११.१५ बजे से १.०० बजे तक

अध्यक्षता - प्रो० अंगने लाल, लखनऊ

१. डॉ० शिवबहादुर सिंह - प्राग् बौद्ध श्रमण परम्परा
नालन्दा

२. डॉ० सच्चिदानन्द श्रीवास्तव - Social Milieu of Early Śramaṇa Tradition
गोरखपुर

३. डॉ० मीरा शर्मा - श्रमण परम्परा एवं लोक धर्म में समन्वय : हरिणेगमेषी के विशेष संदर्भ में
वाराणसी

पंचम सत्र - २७ अपैल २००३
अपरान्ह २.०० बजे से सायं ४.०० बजे तक

अध्यक्षता - प्रो० एल०पी० सिंह, शिमला

१. कुमारी सपना जायसवाल - श्रमण परम्परा का प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण केन्द्र-पावा
गोरखपुर

२. डॉ० शिवप्रसाद - वीर निर्वाण भूमि-पावा की प्राचीनता
वाराणसी

३. डॉ० विजयकुमार - आगमों में अनगार के प्रकार : परिव्राजक, तापस और आजीवकों के संदर्भ में
वाराणसी

४. डॉ० विमलेन्दु कुमार - Śramaṇa Tradition in Pali Literature
वाराणसी

५. ओम प्रकाश सिंह - ऋषिभाषित में वर्णित जैन, बौद्ध एवं वैदिक परम्पराओं में मान्य ऋषि
वाराणसी

६. डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय - तीर्थंकर अरिष्टनेमि
वाराणसी

छठां सत्र - २७ अप्रैल २००३
सायं ४.१५ बजे से ६.०० बजे तक

अध्यक्षता - प्रो० हरिशंकर प्रसाद, नई दिल्ली

१. कु० अर्पिता चटर्जी - बौद्ध एवं जैन श्रमण परम्परा में भिक्षाचर्या : एक तुलनात्मक अध्ययन
वाराणसी

२. कु० अर्चना शर्मा - बौद्ध धर्म में पारमिता की अवधारणा
फैजाबाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. कु० अनामिका सिंह - बुद्धपूर्व श्रमण परम्परा का तात्पर्य
वाराणसी

४. डॉ० शिवाकान्त बाजपेयी - बौद्ध धर्म के विकास में सारिपुत्र मोग्गलायन का अवदान
सागर

५. प्रो० चंद्रिका सिंह उपासक - Paticcasamuppāda and Four Fundamental Truths
वाराणसी

सप्तम सत्र - २८ अप्रैल २००३
प्रात: ९.०० बजे से ११.०० बजे तक

अध्यक्षता - प्रो० एस०एन दुबे, शिमला

१. डॉ० अमर सिंह - जैन तीर्थंकरों का राजगृह से सम्बन्ध
लखनऊ

२. डॉ० मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी- जीवन्तस्वामी की मूर्ति परम्परा
वाराणसी

३. डॉ० हरिशंकर प्रसाद - Śramaṇa - Brāhmaṇa Tradition : A Doctrinal conflicts, Transformation and Adjustment
नई दिल्ली

४. डॉ० पूर्णिमा एस० मेहता - Importance of Āvaśyaka - Jaina Śramaṇa Tradition
अहमदाबाद

५. डॉ० राहुल राज - रामायण के कुछ श्रमण संदर्भ
लखनऊ

६. प्रो० सुदर्शन लाल जैन - पार्श्वनाथ के सिद्धान्त : दिगम्बर-श्वेताम्बर दृष्टि
वाराणसी

अष्टम सत्र - २८ अप्रैल २००३
११.१५ बजे से १.०० बजे तक

अध्यक्षता - प्रो० राममूर्ति त्रिपाठी, उज्जैन

१. डॉ० मोहिनी चतुर्वेदी - उपोसथ
मुकुन्दगढ़, राजस्थान

२. प्रो० एस०एन० दुबे - Śramaṇa Tradition in the age of Mahāvira & Buddha
शिमला

३. डॉ० देवी प्रकाश त्रिपाठी - बुद्ध का सामाजिक दर्शन
बागड़, राजस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. डॉ० गीता श्रीवास्तव वाराणसी - श्रमणियों की जीवन पद्धति

५. डॉ० अंशु श्रीवास्तव वाराणसी - जैन एवं बौद्ध भिक्षुणियों के आहार सम्बन्धी नियम

६. डॉ० फूलचन्द जैन 'प्रेमी' वाराणसी - वैदिक परम्परा में व्रात्य की अवधारणा

- **नवम सत्र** - सायं २.३० से ४.०० तक

  अध्यक्षता - प्रो० जे०पी० सिंह, शिलांग

१. प्रो० राममूर्ति त्रिपाठी उज्जैन - वैदिक दृष्टि एवं श्रमण दृष्टि

२. डॉ० अरुण प्रताप सिंह वाराणसी - श्रमण परम्परा की सामान्य धारा

३. प्रो० महेश्वरी प्रसाद वाराणसी - गौतम बुद्ध पूर्व बौद्ध परम्परा

४. डॉ० श्रीमती नीहारिका - Origin of Śramaṇism : Causes and Conflicts

५. डॉ० ईश्वर शरण विश्वकर्मा- श्रमण धारा की वैदिक अर्हत परम्परा

समापन सत्र

२८ अप्रैल सायं ४.३० - ६.३०

मंगलाचरण - पूज्य मुनि मनीष सागर जी म०सा०

अतिथियों को माल्यार्पण -

प्रो० अंगने लाल (मुख्य अतिथि) - डॉ० डी०पी० त्रिपाठी

प्रो० सागरमल जैन (अध्यक्ष) - डॉ० अरुण प्रताप सिंह

सम्बोधन - डॉ० एल०पी० सिंह
श्री किशनचन्द जी बोथरा

संगोष्ठी में पठित निबन्धों का सार-संक्षेप प्रस्तुतीकरण - प्रो० महेश्वरी प्रसाद

मुख्य अतिथि का सम्बोधन - प्रो० अंगने लाल

अध्यक्षीय सम्बोधन - प्रो० सागरमल जैन

धन्यवाद प्रकाश - डॉ० श्रीप्रकाश पण्डेय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संगोष्ठी के समापन सत्र में मुख्य अतिथि के पद से बोलते हुए प्रो० अंगनेलाल ने कहा कि आज के इस भौतिकवादी युग में सभी लोग रोजी-रोटी का प्रबन्ध करते हैं। भगवान् महावीर एवं गौतम बुद्ध ने भी सामान्यजनों की आर्थिक समृद्धि के लिए अपने उपदेश दिये जो आज भी प्रासंगिक हैं। उन्होंने कहा कि भगवान् महावीर के पंचमहाव्रतों में अस्तेय और अपरिग्रह इसी से सम्बन्धित हैं एवं भगवान् बुद्ध ने भी सारनाथ में दिये गये अपने प्रथम धर्मोपदेश में बहुजन हिताय बहुजन सुखाय का उपदेश दिया था। जन सामान्य को ध्यान में रखते हुए दोनों महापुरुषों ने लोक भाषा में ही अपना उपदेश दिया और अपने शिष्यों को भी लोकभाषा के प्रयोग का ही निर्देश दिया।

पार्श्वनाथ विद्यापीठ के सचिव एवं पूर्व निदेशक प्रो० सागरमल जैन ने अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में कहा कि भारतीय संस्कृति को पूर्णरूप से जानने के लिये जैन, बौद्ध एवं वैदिक परम्परा के ग्रन्थों का पारस्परिक अध्ययन आवश्यक है। एकांगी अध्ययन भारतीय संस्कृति की आत्मा को नहीं छू सकती। जैन अंग आगमों को समझने के लिये बौद्ध त्रिपिटक का अध्ययन आवश्यक है तथा इन दोनों को समझने के लिये उपनिषदों का ज्ञान अपरिहार्य है। उन्होंने आगे कहा कि व्यक्ति की दृष्टि समग्र एवं निरपेक्ष होनी चहिए तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से तथ्यों को परखना होगा तभी श्रमण परम्परा के मूल तत्त्व को समझा जा सकता है।

पार्श्वनाथ विद्यापीठ के निदेशक प्रो० महेश्वरी प्रसाद ने पिछले तीन दिनों तक चले विचार मंथन का सर्वेक्षण प्रस्तुत करते हुए संगोष्ठी में श्रमण परम्परा के विभिन्न पक्षों पर नौ सत्रों में पढ़े गये शोध पत्रों की उपलब्धियाँ को रेखांकित किया और बतलाया कि इससे शोध की इतनी नई सम्भवनायें खुली हैं कि निकट भविष्य में पुनः इसी विषय पर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी की आवश्यकता होगी।

प्रतिभागियों में भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के प्रो० एल०पी० सिंह ने संगोष्ठी के आयोजकों को एक सफल संगोष्ठी के आयोजन के लिये धन्यवाद दिया और युवा प्रतिभाओं की सक्रिय सहभागिता की प्रशंसा की।

बीकानेर के प्रमुख उद्यमी श्री किशनचन्द जी बोथरा ने कहा कि इस सारगर्भित विषय पर इतने विद्वानों को एक साथ बुला कर एक सफल संगोष्ठी के लिये पार्श्वनाथ विद्यापीठ के निदेशक प्रशंसा के पात्र हैं। उन्होंने आगे भी ऐसे संगोष्ठियों के आयोजनों का आह्वान किया।

अन्त में पार्श्वनाथ विद्यापीठ के डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय ने आगन्तुक अतिथियों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए धन्यवाद ज्ञापित किया।

विद्वद्‌जनों की सेवा में शीघ्र ही महावीर के २६००वें जन्म कल्याणक महोत्सव के अवसर पर इस संगोष्ठी में पढ़े गये शोध आलेखों को पुस्तक के रूप में प्रस्तुत करने की योजना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उ०प्र० जैन विद्या शोध संस्थान के निदेशक डॉ० योगेन्द्र सिंह प्रो० राममूर्ति त्रिपाठी को माल्यार्पण कर प्रतीक चिन्ह भेंट करते हुए, पास में बैठे हुए हैं म०गां० काशी विद्यापीठ के कुलपति प्रो० सुरेन्द्र सिंह

संगोष्ठी में मंच पर विराजित प्रो० महेश्वरी प्रसाद, प्रो० एस०एन० श्रीवास्तव, प्रो० सागरमल जैन एवं श्री इन्द्रभूति बरड़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

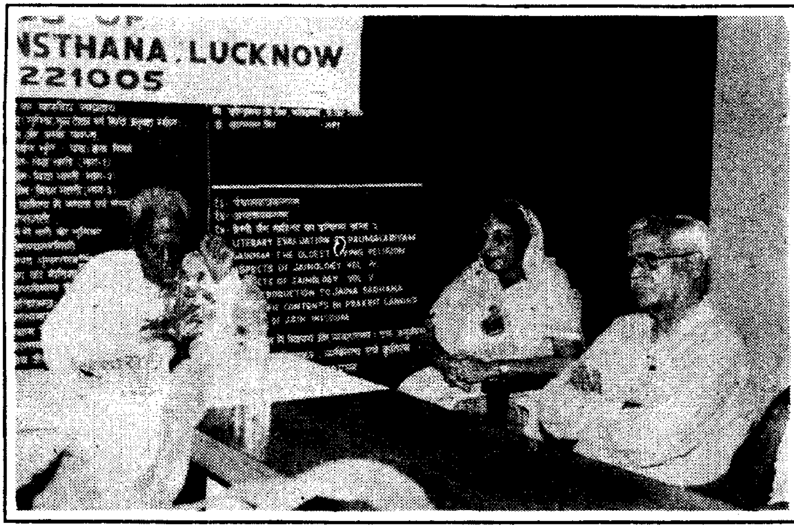

संगोष्ठी में पधारीं काशी की महाराजकुमारी श्रीमती कृष्णप्रिया तथा उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के प्रो० एस०एन० दुबे।
मंच पर बैठे हैं प्रो० सागरमल जी जैन

डॉ० योगेन्द्र सिंह को माल्यार्पण कर भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा भेंट करते हुए पार्श्वनाथ विद्यापीठ के प्रवक्ता डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रो० अँगने लाल को स्मृति चिन्ह भेंट करते हुए विद्यापीठ के निदेशक प्रो० महेश्वरी प्रसाद.

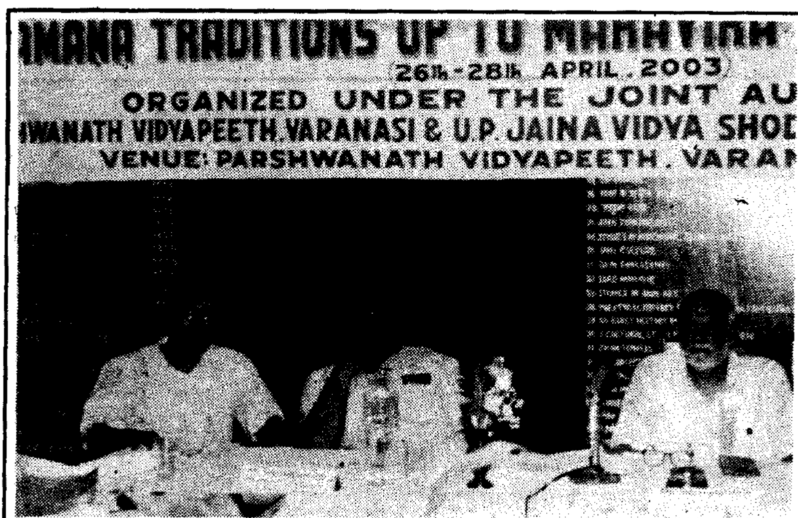

मंच पर बैठे हुए प्रो० महेश्वरी प्रसाद, डॉ० योगेन्द्र सिंह और डॉ० एल०पी० सिंह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संगोष्ठी में मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ के कुलपति प्रो० सुरेन्द्र सिंह

संगोष्ठी में उपस्थित प्रो० हरिशंकर प्रसाद, डॉ० ए०के० राय एवं बौद्ध थेर विसुद्धि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वनाथ विद्यापीठ में अखिल योग प्रशिक्षण केन्द्र का शुभारम्भ

यह हर्ष का विषय है कि पार्श्वनाथ विद्यापीठ द्वारा योगप्रशिक्षण केन्द्र का शुभारम्भ किया गया है। इसके अन्तर्गत कुल ३२ आसन, ८ प्राणायाम एवं १० मुद्राओं तथा उनके विभिन्न प्रकारों के प्रशिक्षण की सशुल्क व्यवस्था की गयी है। प्रशिक्षण की अवधि एक माह, तीन माह और छह माह रखी गयी है। बाहर के प्रशिक्षार्थियों के लिये सशुल्क आवास एवं भोजन की सुविधा भी उपलब्ध है। योग प्रशिक्षण का समय प्रातः ६.३० से ७.३० रखा गया है। प्रशिक्षार्थियों की संख्या को देखते हुए प्रशिक्षण का समय परिवर्तनीय है। इसके अलावा आस्थमा, सिरदर्द एवं मधुमेह के रोगियों के लिये योगचिकित्सा की भी व्यवस्था है। प्रवेश सम्बन्धी नियमों के लिये कृपया सम्पर्क करें -

सी०बी० वासुदेव रेड्डी
e-mail : cbrvreddy@redffmail.com

प्रो० महेश्वरी प्रसाद
निदेशक
पार्श्वनाथ विद्यापीठ
e-mail : parshvanathvidyapeeth
@rediffmail.com

आभार

*इतिहासमनीषी, विद्यावारिधि स्व० डॉ० ज्योति प्रसाद जैन की १५वीं पुण्यतिथि पर उनके सुयोग्य पुत्रों डॉ० शशिकान्त जैन एवं श्री रमाकान्त जैन ने अपने पूज्य पिता की पुण्य स्मृति में **श्रमण** को भेंट-स्वरूप ५१/- रुपये की राशि प्रदान की।*

✵

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार विविधा

प्रसिद्ध समाजसेवी स्व० जसकरण बोथरा पर डाक विभाग द्वारा विशेष आवरण व पोस्ट मार्क जारी

बीकानेर १९ मई : राजस्थान के स्वास्थ्य मंत्री श्री बुलाकी दास कल्ला ने कहा कि समाजसेवी जसकरण जी बोथरा मृदुस्वभाव के बेबाक व निर्भीक विचारधारा वाले व्यक्ति थे। कोलकाता में बुक बैंक की स्थापना व विकलांगों की सेवा का अनुकरणीय कार्य उन्होंने किया। साधुमार्गी जैन परम्परा से जुड़े स्व० बोथरा जी ने गंगाशहर और भीनासर में नगरपालिका के माध्यम से विकास कार्य कराया। श्री कल्ला ने १५ मई को लालगढ़ पैलेस के दरबार हाल में ऑल इन्डिया फिलाटेलिस्टर एसोसियेशन के तत्त्वाधान में भारत सरकार के डाक विभाग द्वारा समाजसेवी स्व० जसकरण बोथरा के ७५वें जन्म महोत्सव के अवसर पर जारी किये गये विशेष आवरण व पोस्ट मार्क के लोकार्पण समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में उक्त विचार व्यक्त किये। इस अवसर पर समारोह में उपस्थित राजस्थान खादी ग्रामोद्योग बोर्ड के अध्यक्ष श्री भवानी शंकर शर्मा, ऑल इन्डिया फिलाटेलिस्ट एसोसिएशन के अध्यक्ष व लूणकरणसर के विधायक श्री माणिकचन्द जी सुराणा तथा अन्य गणमान्यजन उपस्थित थे।

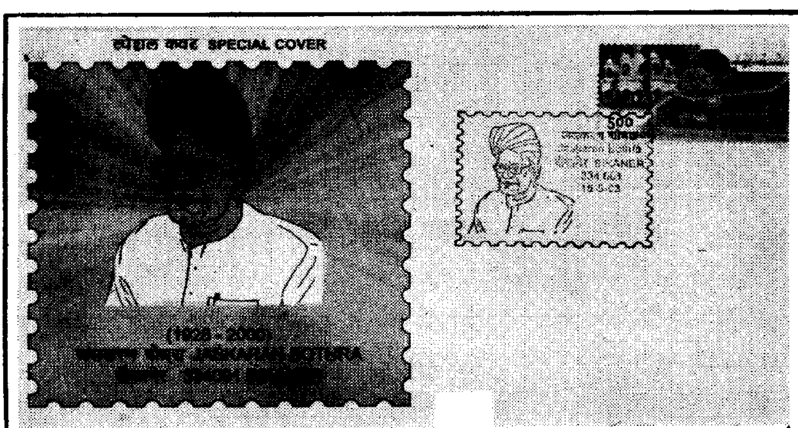

भारतीय डाक विभाग द्वारा जारी विशेष आवरण व पोस्ट मार्क

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रो० राममूर्ति त्रिपाठी को *भारत भारती* सम्मान

लखनऊ २१ मई : प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने प्रख्यात् साहित्यकार प्रो० राममूर्ति त्रिपाठी को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा प्रवर्तित भारत भारती पुरस्कार से सम्मानित किया। लखनऊ में दि० २१ मई को आयोजित पुरस्कार वितरण समारोह में श्री बाजपेयी ने प्रो० त्रिपाठी को २.५ लाख रुपये की राशि, प्रशस्तिपत्र और शाल भेंट किया। ज्ञातव्य है कि ***भारत भारती*** उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा दिया जाने वाला सर्वोच्च सम्मान है जो प्रतिवर्ष हिन्दी साहित्य जगत् के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् को उनकी उल्लेखनीय साहित्य सेवा के लिये प्रदान किया जाता है। पार्श्वनाथ विद्यापीठ से प्रो० त्रिपाठी का निकट का सम्बन्ध है। विद्यापीठ द्वारा गत अप्रैल माह में आयोजित **महावीर एवं गौतम बुद्ध पर्यन्त श्रमण परम्परा** विषयक संगोष्ठी में आपने उद्घाटन सत्र एवं एक शैक्षणिक सत्र की अध्यक्षता की। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान वस्तुत: प्रो० त्रिपाठी को अपना सर्वोच्च सम्मान प्रदान कर स्वयं गौरवान्वित हुआ है।

जोधपुर में भागवती दीक्षा महोत्सव सम्पन्न

जोधपुर १३ मई : सुश्री निकिता लोढ़ा और सुश्री प्रीति जैन की भागवती दीक्षा सूर्यनगरी जोधपुर स्थित निजाम की हवेली में श्रमण संघीय प्रथम युवाचार्य श्री मिश्रीमल जी महाराज 'मधुकर' एवं महासती श्री उमरांव कुंवर जी म०सा० 'अर्चना' की पावन निश्रा में दि० १२ मई को सानन्द सम्पन्न हुई। इस अवसर पर महासती प्रेमकुंवर जी, महासती जयमाला जी, महासती दयाकंवर जी ठाणा १६ की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दया शान्ति मेडिकल चैरिटेबल क्लीनिक का भव्य शुभारम्भ

बैंगलोर २२ मई : श्री शांतिलाल वनमाली दास शेठ फाउन्डेशन, बैंगलोर द्वारा प्रवर्तित दया शान्ति चैरिटेबल मेडिकल क्लीनिक, जयनगर, बैंगलोर का भव्य शुभारम्भ दि० २१ मई को हुआ। ज्ञातव्य है कि सुप्रसिद्ध गांधीवादी स्व० शांति भाई वनमाली शेठ ने पचास के दशक में पार्श्वनाथ विद्याश्रम (अब पार्श्वनाथ विद्यापीठ) के व्यवस्थापक के रूप में अपनी अमूल्य सेवायें दी थीं। स्व० शान्तिभाई के सुयोग्य पुत्रों ने अपने पूज्य पिता एवं माता की पुण्य स्मृति में उन्हीं के नाम पर एक चैरिटेबल क्लीनिक की स्थापना कर ऐसा महान् कार्य किया है जो हम सभी के लिये अनुकरणीय है।

श्रुत पंचमी पर्व, शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस एवं अभिनन्दन समारोह सम्पन्न

लखनऊ ६ जून : ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी गुरुवार ५ जून २००३ को तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र, लखनऊ का शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस समारोह सम्पन्न हुआ। ज्ञातव्य है कि अब से २७ वर्ष पूर्व सन् १९७६ ई० में इस पुस्तकालय की स्थापना हुई थी। इस समारोह में श्री लूणकरण जी नाहर, डॉ० पूर्णचन्द्र जैन, श्री प्रकाश चन्द्र जैन आदि विशिष्टजन उपस्थित थे।

इसी समारोह में अहिंसा इण्टरनेशनल प्रेमचन्द्र जैन पत्रकारिता पुरस्कार २००३ सम्मानित किये जाने के उपलक्ष्य में **शोधदर्श** (लखनऊ) और **समन्वयवाणी** (जयपुर) के यशस्वी सम्पादक वयोवृद्ध विद्वान् श्री अजित प्रसाद जी जैन का अभिनन्दन किया गया।

अमेरिकन बायोग्रॉफिकल इन्स्टीट्यूट द्वारा Man of the Year - 2003 की प्रतिष्ठापरक उपाधि के लिये चयनित होने पर डॉ० शशिकान्त जैन का भी उक्त समारोह में अभिनन्दन किया गया।

तन-मन और धन द्वारा निःस्वार्थ रूप से जैन विद्या के प्रचार-प्रसार के लिये पूर्ण समर्पित श्री अजित प्रसाद जी जैन एवं डॉ० शशिकान्त जी जैन का उनकी उक्त गौरवपूर्ण उपलब्धि पर हम हार्दिक अभिनन्दन करते हुए उनके शतायु होने की कामना करते हैं।

इतिहासमनीषी, विद्यावारिधि स्व० डॉ० ज्योति प्रसाद जी जैन की १५वीं पुण्यतिथि पर ११ जून को ज्योति निकुंज, चारबाग में एक गोष्ठी एवं काव्य संध्या का भी आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता श्री अजित प्रसाद जी ने की। इस कार्यक्रम में डॉ० रामाश्रय प्रसाद मुख्य अतिथि के रूप में और पं० गया प्रसाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिवारी 'मानस' विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित थे। इस अवसर पर बड़ी संख्या में उपस्थित विद्वानों ने स्व० डॉ० जैन द्वारा भारतीय इतिहास एवं वाङ्मय में उनके योगदान पर प्रकाश डाला और नन्हीं बालिकाओं के साथ-साथ उपस्थित कविजनों ने भी अपनी-अपनी रचनाओं से काव्य संध्या को रसासिक्त बनाया।

अर्हत्वचन पुरस्कार २००२ की घोषणा

इन्दौर १५ जून : कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा मौलिक एवं गवेषणात्मक आलेखों के सृजन को प्रोत्साहित एवं उनके लेखकों के श्रम को सम्मानित करने हेतु वर्ष १९९० में **अर्हत्वचन** पुरस्कारों की स्थापना की गयी है। इसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष **अर्हत्वचन** में एक वर्ष में प्रकाशित आलेखों का मूल्यांकन कर उन्हें प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पुरस्कार के लिये चुना जाता है। पुरस्कृत लेख के लेखकों को क्रमशः ५००१/-, ३००१/-, २००१/- की नकद राशि, प्रशस्तिपत्र एवं स्मृतिचिन्ह से सम्मानित किया जाता है।

अर्हत्वचन पुरस्कार वर्ष २००२ हेतु चयनित लेख एवं उनके लेखकों का विवरण निम्नानुसार है :

प्रथम पुरस्कार : The Jaina Hagiography and the Saṭkhaṇḍāgama 14 (4) October 2002, 49-60, Dr. S.A. Bhuvanendra Kumar, Editor-Jinamanjari, 4665 Moccasin trail, Miss issauga Canada L4Z, 2W5

द्वितीय पुरस्कार : Ācārya Vīrasena and his Mathematical Contribution, 14 (2-3), April-September 2002, 79-90, Mrs. Pragati Jain, Lecturer ILVA Science and Commerce College, Indore.

तृतीय पुरस्कार : काल विषयक दृष्टिकोण, १४ (२-३) अप्रैल-सितम्बर २००२, ४१-५० डॉ० (ब्र०) स्नेहरानी जैन, C/o श्री राजकुमार मलैया, भगवानगंज, स्टेशन रोड, सागर

कार्यशाला समापन एवं पुरस्कार समर्पण समारोह सम्पन्न

नई दिल्ली १६ जून : भोगीलाल लहेरचन्द इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलाजी, दिल्ली द्वारा प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी प्राकृत भाषा व साहित्य पर तीन सप्ताह की कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसका समापन समारोह १५ जून रविवार को सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर आचार्य हेमचन्द्रसूरि पुरस्कार २००१ एवं २००२ के समर्पण का कार्यक्रम भी आयोजित रहा। वर्ष २००१ का उक्त पुरस्कार प्रो० जी०वी० टगारे को उनकी प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा के आजीवन अध्ययन एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शोध के लिये तथा वर्ष २००२ का पुरस्कार डॉ० नगीन जी० शाह को जैन धर्म दर्शन के क्षेत्र में उनके द्वारा किये गये गम्भीर अध्ययन एवं गहन शोध के उपलक्ष्य में प्रदान किया गया।

प्रवर्तिनी आर्या प०पू० ऊँकार श्रीजी ठाणा १० का चातुर्मास अब सतना में

श्री पार्श्वचन्द्रगच्छीया प्रवर्तिनी आर्या ऊँकार श्रीजी ठाणा - १० का वर्ष २००३ का मंगल चातुर्मास अब मध्यप्रदेश के सतना जिले में होना सुनिश्चित हुआ। ज्ञातव्य है कि प्रवर्तिनी श्रीजी का यह चातुर्मास कानपुर में होना पूर्व निर्धारित रहा और इसके लिये वे वाराणसी से विहार कर इलाहाबाद, कौशाम्बी होते हुए कानपुर जा रही थीं। मार्ग में वयोवृद्ध साध्वी चन्द्रकला श्री जी म० गम्भीर रूप से अस्वस्थ हो गयीं और उन्हें सतना में एक निजी चिकित्सालय में भरती कराना पड़ा। इस परिस्थिति जन्य कारण एवं सतना श्री संघ की वीनती तथा कानपुर श्री संघ की सहमति से प्रवर्तिनी जी ठाणा - १० का चातुर्मास सतना में होना निश्चित हुआ।

श्रीमती विमलेश तंवर को पीएच०डी० की उपाधि

श्रीमती विमलेश तंवर को उनके द्वारा लिखे गये शोध प्रबन्ध - 'जयोदय महाकाव्य का अलंकार पक्ष' पर चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ द्वारा पीएच०डी० की उपाधि प्रदान की गयी। श्रीमती तंवर ने अपना उक्त शोध प्रबन्ध डॉ० कपूरचन्द जैन, खतौली के निर्देशन में पूर्ण किया है। श्रीमती तंवर को उनके इस अकादमिक उपलब्धि पर पार्श्वनाथ विद्यापीठ की ओर से हार्दिक बधाई।

श्री महेन्द्र दर्डा निर्विरोध अध्यक्ष निर्वाचित

विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं से पिछले २५ वर्षों से सक्रिय रूप से जुड़े महाराष्ट्र प्रान्त स्थित यवतमाल जिले के निवासी श्री महेन्द्र दर्डा पिछले दिनों निर्विरोधरूप से विदर्भ चैम्बर ऑफ कामर्स के पुनः अध्यक्ष चुने गये। श्री दर्डा को उनके इस गौरवपूर्ण उपलब्धि के लिये विद्यापीठ की ओर से हार्दिक बधाई।

एवार्ड हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित

भगवान् महावीर फाउण्डेशन ने प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी निम्नलिखित तीन क्षेत्रों में विशिष्ट कार्य करने वाले व्यक्तियों अथवा संस्थाओं से तीन पुरस्कारों के लिये १५ अगस्त २००३ तक प्रविष्टियां आमंत्रित की हैं -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. अहिंसा एवं शाकाहार का प्रचार-प्रसार

२. शिक्षा एवं चिकित्सा

३. सामाजिक एवं सामुदायिक सेवा

प्रविष्टियां भेजने का पता -

श्री सुगाल चन्द जैन

मैनेजिंग ट्रस्टी, भगवान् महावीर फाउण्डेशन

११, पोनप्पा लेन, टिप्लीकेन, चेन्नई - ६००००५

ज्ञातव्य है कि उक्त तीनों पुरस्कारों के अन्तर्गत पांच लाख रुपये नकद, प्रशस्तिपत्र एवं भगवान् महावीर की प्रतिमा स्मृतिचिह्न स्वरूप प्रदान की जाती है।

✵

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्य सत्कार

कर्मप्रकृति भाग ३ - रचनाकार शिवशर्मसूरि, अज्ञातकृत चूर्णि, मुनिचन्द्रसूरि कृत टिप्पण एवं मलयगिरि तथा यशोविजयजी द्वारा रचित वृत्ति और चित्रों-यंत्रों से युक्त गुजराती भाषा में प्रश्नोत्तर सहित; सम्पादक - आचार्य विजयवीरशेखर सूरि, आचार्य विजयधर्मघोष सूरि एवं गणि कैलाशविजय जी; आकार - रायल; प्रकाशक- श्री रांदेर रोड श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ, अडाजणा पाटीआ, सूरत ३९५००९; प्राप्तिस्थान - श्री नेमिविज्ञानकस्तूर सूरीश्वर जी ज्ञान मंदिर C/o निकेश जयंतीभाई संघवी, कायस्थ महाल, गोपीपुरा - सूरत ३९५००१; पक्की जिल्द; पृष्ठ - ५००; मूल्य - पठन-पाठन।

जैन परम्परा में कर्मवाद का अत्यन्त सूक्ष्म, सुव्यवस्थित एवं विस्तृत विवेचन है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं में इस विषय पर स्वतंत्र रूप से विभिन्न ग्रन्थों की रचना हुई है। श्वेताम्बर परम्परा में इस विषय का प्राचीन ग्रन्थ है शिवशर्मसूरि कृत **कर्मप्रकृति**। प्राकृत भाषा में निबद्ध इस कृति में ४७५ गाथायें हैं। रचनाकार का सत्ता समय विक्रम सम्वत् की ५वीं शती माना जाता है। इस कृति पर विक्रम सम्वत् की १२वीं शती के पूर्व रची गयी अज्ञातृ कर्तृक एक चूर्णि मिलती है। विक्रम सम्वत् १२वीं शती में बृहद्गच्छीय आचार्य मुनिचन्द्रसूरि ने इस पर टिप्पण की रचना की। वि०सं० की १३ एवं १८वीं शती में मलयगिरि एवं तपागच्छीय उपा० यशोविजय द्वारा इस कृति पर रचित वृत्तियां भी प्राप्त होती हैं। शिवशर्मसूरि कृत उक्त रचना के कई संस्करण विभिन्न वृत्तियों के साथ कई स्थानों से पूर्व में प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक में भी मूल ग्रन्थ, उस पर रची गयी चूर्णि, टिप्पण एवं वृत्तियों का समावेश है। अनेक चार्टों एवं यन्त्रों के माध्यम से गुजराती भाषा में प्रश्नोत्तर शैली के माध्यम से विभिन्न तथ्यों का स्पष्टीकरण इस संस्करण की सबसे बड़ी विशेषता है। रायल आकार और पक्की जिल्द के साथ श्रेष्ठ कागज पर मुद्रित ५०० पृष्ठों के इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का मूल्य **पठन-पाठन** रखा गया है। यह पुस्तक प्रत्येक पुस्तकालयों एवं कर्म साहित्यविषयक शोधकर्ताओं के लिये संग्रहणीय और पठनीय है। ऐसे महत्त्वपूर्ण और व्ययसाध्य ग्रन्थ का प्रकाशन और उसका नि:शुल्क वितरण प्रकाशक और उसके अर्थ सहयोगीजनों की उदारता का जीवन्त उदाहरण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितमहाकाव्यम् भाग २ एवं ३, संपा० - पंन्यास श्री संयमरति विजय गणि के शिष्य पंडितरत्न श्री योगतिलक गणि जी म०सा०, आकार - पोथी; प्रकाशक - संयम सुवास C/o शेठ जमनादास जीवतलाल, जूनागंज बाजार, भाभर, जिला - बनासकांठा, गुजरात, पिनकोड - ३८५३२०; प्रथम आवृत्ति - वि०सं० २०५८; अमूल्य

विक्रम सम्वत् की १२वी शताब्दी में चौलुक्यनरेश जयसिंह सिद्धराज और राजर्षि कुमारपाल के समय गुर्जरधरा में श्वे० जैन परम्परा अपने विकास के चरमोत्कर्ष तक पहुंच गयी। इसका प्रधान श्रेय कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्रसूरि को है। श्वे० जैन परम्परा की यह गौरवपूर्ण स्थिति न केवल बाद की शताब्दियों में लम्बे समय तक बनी रही बल्कि आज भी प्रायः वही स्थिति है। वस्तुतः, आचार्य हेमचन्द्र की अगाध विद्वत्ता और उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व ने जयसिंह सिद्धराज और कुमारपाल को इस प्रकार प्रभावित किया कि शासकों के साथ-साथ बड़े-बड़े राज्याधिकारी, श्रेष्ठीवर्ग और जनसामान्य भी इससे अछूते न रहे और श्वे० परम्परा की जड़ें वहां अत्यन्त गहराई तक पहुंच गयीं जो वहां आज भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं। हेमचन्द्रसूरि न केवल एक अत्यन्त प्रभावशाली जैन आचार्य थे बल्कि उस काल के श्रेष्ठतम विद्वान् भी थे। उनके द्वारा रचित कालजयी कृतियां इसका ज्वलन्त प्रमाण हैं। प्रायः ये सभी कृतियां विद्वानों द्वारा सुसंपादित एवं विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी कुछ कृतियों का तो एक से अधिक स्थानों से प्रकाशन भी हो चुका है। विवेच्च ग्रन्थ **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित** के बारे में भी यही बात कही जा सकती है। संस्कृत भाषा में रचित इस महत्त्वपूर्ण कृति का गुजराती, अंग्रेजी और हिन्दी भाषा में अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है।

प्रस्तुत संस्करण के सम्पादक पंडितरत्न मुनिश्री योगतिलक विजय जी गणि ने अत्यन्त श्रमपूर्वक इस ग्रन्थ का सम्पादन किया है। हम आशा करते हैं कि उनके द्वारा सम्पादित इस विशाल ग्रन्थ के अन्य भाग भी शीघ्र ही विद्वद्जनों के समक्ष होंगे। ग्रन्थ की प्रतिष्ठा के अनुरूप ही सर्वोत्तम कागज पर शुद्ध और सुस्पष्ट रूप से मुद्रित इस महत्त्वपूर्ण कृति का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार हो, इस दृष्टि से इसे **अमूल्य** ही रखा गया है। एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का व्यय साध्य प्रकाशन और उसका अमूल्य वितरण कर प्रकाशक संस्था और उसके अर्थ सहयोगी श्रेष्ठियों ने एक अनुकरणीय कार्य किया है। प्रत्येक पुस्तकालयों एवं जैन विद्या के क्षेत्र में संशोधनरत विद्वानों के लिये यह कृति अनिवार्य रूप से संग्रहणीय है।

त्रिपुराभारतीस्तव - रचनाकार - लघ्वाचार्य; सम्पादक - मुनि श्री वैराग्यरति विजय; पूर्व सम्पादक - पं० लक्ष्मणदत्त शास्त्री और मुनि जिनविजय जी; प्रकाशक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवचन प्रकाशन, C/o श्री भूपेश भायाणी, ४८८, रविवार पेठ, पूना -४११००२; संशोधित संस्करण वि०सं० २०५८; आकार डिमाई; पृष्ठ ४०+७८; मूल्य ६०/- रुपये मात्र।

प्रस्तुत पुस्तक तपागच्छाधिपति आचार्य श्री रामचन्द्रसूरि जी म०सा० के प्रधान शिष्य श्रीमद् विजयमहोदयसूरीश्वर जी म०सा० की पुण्य स्मृति में उन्हीं के नाम पर स्थापित श्री विजयमहोदयसूरि ग्रन्थमाला का नवां पुष्प है। पूर्व में इस कृति का प्रकाशन खेमराज श्रीकृष्ण-मुम्बई और राजस्थान पुरातत्व मंदिर, जयपुर द्वारा हो चुका है। उक्त दोनों संस्करणें को समाप्त हुए काफी समय बीत गया था और उनकी निरन्तर मांग बनी हुई थी इस दृष्टि से मुनि श्री वैराग्यरति विजय जी म०सा० ने पूर्व प्रकाशित दोनों संस्करणों के आधार पर उक्त कृति को पुनर्सम्पादित किया। इस संस्करण में प्रस्तावना के अन्तर्गत 'विमर्श' में विद्वान् सम्पादक ने वैष्णव, शैव, शाक्त आदि तंत्रों के साथ जैन तंत्र का भी बड़ा ही सुन्दर परिचय दिया है। प्रस्तावना के अन्तर्गत मुनि प्रशमरति विजय द्वारा लिखित 'तेरा ध्यान जो न करे ----' और मुनि धुरंधर विजय जी द्वारा लिखा गया 'प्रवेश' भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ऐसे उपयोगी ग्रन्थ को पुनः सम्पादित करने और उसे त्रुटिरहित रूप से अच्छे कागज पर मुद्रित और अल्प मूल्य में पक्की जिल्द के साथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु विद्वान् सम्पादक और प्रकाशक संस्था दोनों ही बधाई के पात्र हैं। जैन तन्त्र पर शोधकार्य करने वाले विद्वानों एवं अध्येताओं के साथ-साथ प्रत्येक पुस्तकालयों के लिये यह पुस्तक अनिवार्य रूप से संग्रहणीय है।

प्रबुद्धरोहिणेयम् - रचनाकार - मुनि रामभद्र, गुजराती अनुवादक - आचार्य विजय शीलचन्द्रसूरि; प्रकाशक - जैन साहित्य अकादमी, C/o श्री कीर्तिलाल हालचन्द वोरा, नवनिधि , प्लॉट नं० १७४, सेक्टर ४, गांधीधाम (कच्छ) पिनकोड - ३७०२०१; प्रथम संस्करण २००३ ई०; आकार - डिमाई; पृष्ठ ३६+१३८; मूल्य - ९०/- रुपये।

प्रस्तुत कृति के रचयिता मुनि रामभद्र सुप्रसिद्ध जैन आचार्य बृहद्गच्छीय वादिदेवसूरि के प्रशिष्य एवं जयप्रभसूरि के शिष्य हैं। यह रचना संस्कृत भाषा में रची गई है। इसमें भगवान् महावीर के समकालीन राजगृह नरेश श्रेणिक के शासनकाल में हुए प्रसिद्ध चोर रोहिणेय के प्रबुद्ध होने का बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। इस कृति की रचना जालौर के श्रेष्ठी पार्श्वचन्द्र के पुत्रों - यशोवीर और अजयपाल के अनुरोध पर की गयी थी और उन्ही द्वारा वि०सं० १२५० में जालौर में निर्मित आदिनाथ जिनालय में अभिनीत भी की गयी। यह कृति ईस्वी सन् १९१८ में आत्मानन्द सभा, भावनगर से प्रकाशित हुई थी और पिछले कई दशकों से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुपलब्ध रही। आचार्य विजयशीलचन्द्र सूरि जी म०सा० ने उक्त कृति को न केवल मूल रूप में विद्वद्जगत् के समक्ष उपस्थित किया बल्कि उसका गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित कर साहित्य जगत् की महती सेवा की। अच्छे कागज पर सुस्पष्ट मुद्रण और पक्की बाइंडिंग के साथ अत्यन्त अल्प मूल्य में प्रस्तुत कर प्रकाशक संस्था ने सराहनीय कार्य किया है। यह पुस्तक सभी पुस्तकालयों के लिये संग्रहणीय और गुजराती भाषा-भाषी प्रत्येक नागरिक के लिये अनिवार्य रूप से पठनीय और मननीय है। इस महत्त्वपूर्ण कृति का हिन्दी अनुवाद होना भी आवश्यक है ताकि हिन्दीभाषीजन भी इससे लाभान्वित हो सकें।

सुरसुन्दरीचरियं - रचनाकार - आचार्य धनेश्वरसूरि : सम्पादक - मुनि राज विजय जी म०सा०; प्रथम संस्करण वि०सं० १९७२/ई० सन् १९१६, पुनर्मुद्रण वि०सं० २०५९/ई० सन् २००२; प्रकाशक - प्रवचन प्रकाशन C/o श्री भूपेश भायाणी, ४८८, रविवार पेठ, पूना ४११००२; आकार - डिमाई, पृष्ठ ४६+८+२८६; मूल्य - ८०/- रुपये मात्र।

जैन परम्परा के अन्तर्गत स्त्रीपात्र प्रधान रचनाओं में चन्द्रकुलीन आचार्य धनेश्वरसूरि द्वारा रचित उक्त कृति का विशिष्ट स्थान है। प्राकृत भाषा में रचित यह रचना १६ परिच्छेदों में विभक्त है। प्रत्येक परिच्छेद में २५० गाथायें हैं।

पूर्व में यह कृति वि०सं० १९७२ में मुनि राजविजय जी द्वारा सुसंपादित होकर विविध साहित्य शास्त्रमाला, वाराणसी से प्रकाशित हुई थी। लगभग इसी समय जैनधर्म प्रचारक सभा, भावनगर से इसका गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित हुआ। ये संस्करण लम्बे समय से अनुपलब्ध रहे। प्रवचन प्रकाशन, पूना द्वारा उक्त ग्रन्थ का पुनर्मुद्रण कर एक महान् कार्य किया गया है। इस संस्था द्वारा पूर्व प्रकाशित और वर्तमान में अनुपलब्ध मौलिक ग्रन्थों के प्रकाशन और लागत मूल्य पर उनके वितरण की जो व्यवस्था की गयी है वह स्तुत्य है। हमें विश्वास है कि प्रकाशक संस्था द्वारा भविष्य में भी इसी प्रकार के अन्य दुर्लभ ग्रन्थ प्रकाशित और अल्प मूल्य में उपलब्ध होते रहेंगे।

भारतीय दिगम्बर जैन अभिलेख और तीर्थ परिचय : मध्य प्रदेश - (१३वीं शती तक) - लेखक-सम्पादक - डॉ० कस्तूरचन्द्र जैन 'सुमन', आकार डिमाई, पृष्ठ - २४+३१५+२२ चित्र; प्रकाशक - श्री दिगम्बर जैन साहित्य संस्कृति संरक्षण समिति, डी-३०२, विवेक विहार, दिल्ली ११००९५, पक्की जिल्द, मूल्य १२०/- रुपये मात्र।

भारतीय इतिहास के स्रोत के रूप में अभिलेखीय साक्ष्यों की प्रामाणिकता निर्विवाद है। जैन परम्परा के इतिहास के संदर्भ में भी ठीक यही बात कही जा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकती है। विभिन्न जैन विद्वानों ने जैन परम्परा के इतिहास के स्रोत के रूप में इस विधा की उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुए जैन अभिलेखों के संकलन, सम्पादन और प्रकाशन के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है। इनमें स्व० पूरनचन्द जी नाहर, पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजय, आचार्य बुद्धिसागरसूरि, पं० कामता प्रसाद जैन, डॉ० हीरालाल जैन, मुनि विद्याविजय जी, मुनि जयन्तविजय जी, मुनि कांतिसागर जी, महो० विनयसागर जी, अगरचन्द जी भंवरलाल जी नाहटा, दौलतसिंह लोढ़ा, नन्दलाल जी लोढ़ा, मुनि विशालविजय जी, पं० विजयमूर्ति शास्त्री, श्री विद्याधर जोहरापुरकर, मुनि कंचनसागर आदि का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। इसी गौरवशाली परम्परा में अगली कड़ी हैं डॉ० कस्तूरचन्द्र जी 'सुमन'।

प्रस्तुत पुस्तक में डॉ० सुमन ने मध्य प्रदेश के विभिन्न जैन तीर्थों एवं कुछ अन्य स्थानों और वहां के विभिन्न संग्रहालयों से प्राप्त जैन प्रतिमाओं, मंदिरों की दीवालों एवं मानस्तभों पर उत्कीर्ण ३०१ अभिलेखों के मूल पाठ की वाचना, उनका हिन्दी भावार्थ एवं लेख प्राप्ति से सम्बद्ध स्थान या तीर्थ का ससंदर्भ विवरण प्रस्तुत किया है। पुस्तक के अन्त में दो परिशिष्ट भी हैं जिनमें से प्रथम में लेखों के प्राप्ति स्थल का अकारादिक्रम से नाम दिया गया है। द्वितीय परिशिष्ट में लेखों में उल्लिखित विभिन्न जैन ज्ञातियों की तालिका है। वस्तुत: इस पुस्तक में एक ओर मूल अभिलेखों की वाचना और दूसरी ओर उनका सम्यक अध्ययन एवं हिन्दी भावार्थ प्रस्तुत करने के कारण मूल स्रोत और संदर्भ ग्रन्थ - दोनों ही रूपों में इसकी उपयोगिता निर्विवाद है। डॉ० सुमन के इस ग्रन्थ से प्रेरणा लेकर अन्य विद्वान् भी इस क्षेत्र में आगे आयेंगे ऐसा विश्वास है। अच्छे कागज पर निर्दोष रूप से मुद्रित एवं पक्की जिल्द के साथ ही अल्प मूल्य में इसे अध्येताओं के समस्त प्रस्तुत कर प्रकाशक संस्था ने सराहनीय कार्य किया है। यह पुस्तक प्रत्येक ग्रन्थालयों एवं जैन इतिहास के अध्येताओं के लिये अनिवार्य रूप से संग्रहणीय और पठनीय है।

भारतीय श्रमण संघ गौरव आचार्य सोहन - लेखक - पंडितरत्न, प्रवर्तक स्व० शुक्लचन्द जी म०सा०; संपा० - मुनिश्री सुमनकुमार जी; म०सा० 'श्रमण' (प्रवर्तक - उत्तर भारत); आकार - डिमाई, द्वितीय संस्करण २००२ ईस्वी; प्रकाशक - आचार्य सोहनलाल ज्ञान भंडार, श्री महावीर जैन भवन, महावीर मार्ग, बाजार बस्तीराम, अम्बाला शहर (हरियाणा); पृष्ठ १६+३९७; मूल्य - पठन-पाठन/सदुपयोग।

विश्व के सभी धर्म-सम्प्रदायों में समय-समय पर अनेक महापुरुषों का प्रादुर्भाव हुआ है। निर्ग्रन्थ परम्परा के श्वेताम्बर सम्प्रदाय की एक शाखा - स्थानकवासी परम्परा में विक्रम सम्वत् की २०वीं शती में हुए आचार्य सोहनलाल जी म०सा०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे ही महापुरुष थे जिन्होंने धर्म-सम्प्रदाय-जाति आदि से ऊपर उठकर मानवमात्र को दया, परोपकार, सहिष्णुता आदि सद्गुणों के मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित किया। आदर्शों की बात तो हम सभी करते हैं, पर जीवन में उतारने की सामर्थ्य केवल महापुरुषों में ही होती है। सामान्यजनों और महापुरुषों में यही अन्तर है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक स्व० शुक्लचन्द्र जी महाराज ने आचार्य सोहनलाल जी म० द्वारा ही दीक्षा ग्रहण की थी। अपने दीक्षा प्रदाता गुरु की पुण्य स्मृति में उन्होंने इस पुस्तक की रचना की। इसका प्रथम संस्करण १९५३ ईस्वी में प्रकाशित हुआ था, जो लम्बे समय से अनुपलब्ध रहा है। उत्तर भारतीय प्रवर्तक मुनि श्री सुमनकुमार जी म०सा० द्वारा सुसम्पादित और आचार्य श्री सोहनलाल जैन ज्ञान भंडार, अम्बाला शहर द्वारा ई० सन् २००२ में भगवान् महावीर की २६००वी जयन्ती के अवसर पर प्रकाशित इस पुस्तक में कुल ४५ अध्याय और ७ परिशिष्ट हैं। परिशिष्ट क्रमांक ३ ''श्री आत्मारामजी : कुछ तथ्य''; परिशिष्ट क्रमांक ५ श्वे० स्थानकवासी श्रमणपरम्परा; परिशिष्ट क्रमांक ६ पंजाब श्रमण संघ की आचार्य परम्परा और अंतिम परिशिष्ट - अ०भा० वर्ध०स्था० श्रमणसंघ की आचार्य - परम्परा ऐतिहासिक अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। पुस्तक के प्रारम्भ में प्रथम संस्करण में दी गयी महत्त्वूर्ण प्रस्तावना को अविकल रूप से दिया गया है। पुस्तक की साज-सज्जा अत्यन्त आकर्षक और मुद्रण सुस्पष्ट है। अच्छे कागज पर लगभग ५०० पृष्ठों में मुद्रित और पक्की जिल्द के इस ग्रन्थ का मूल्य **सदुपयोग** एवं **पठन-पाठन** रखा गया है। महापुरुषों के जीवन चरित्र को पढ़ने में सभी को रुचि होती है। हम सभी चावपूर्वक इसे पढ़ते हैं किन्तु जहां उनके आदर्शों को जीवन में उतारने की बात आती है वहां हमारा स्वार्थ आगे आ जाता है और दृढ़निश्चय के अभाव में हम अपने स्वार्थों के शिकार हो जाते हैं। यदि हम महापुरुषों के जीवन चरित्र से प्रेरणा लेकर उनके बतलाये गये आदर्शों का एक अंश मात्र भी अपने जीवन में उतार सकें तो हमारा भविष्य निश्चित ही उज्जवल होगा। हमें विश्वास है कि पाठक गण इस पुस्तक का अध्ययन और मनन कर इसमें बताये गये मार्ग पर चल कर अपने जीवन को गौरवान्वित करने का प्रयास करेंगे।

साधना पथ का महायात्री प्रज्ञामहर्षि श्री सुमनमुनि जी महाराज : प्रस्तोता- मुनि श्री सुमंतभद्र 'साधक' एवं मुनि श्री प्रवीण कुमार; संपादक - श्री विमल जैन 'आशु'; आकार -डिमाई, पृष्ठ - २२४; प्रथम संस्करण - २००१ ईस्वी; प्रकाशक- आचार्य सोहनलाल जैन ज्ञान भंडार, श्री महावीर जैन भवन, महावीर मार्ग, बाजार बस्तीराम, अम्बाला शहर (हरियाणा); मूल्य - स्वाध्याय, चिन्तन-मनन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महापुरुषों का जीवन चरित्र सभी के लिये प्रेरणदायी होता है और उसे लोग अत्यन्त रुचिपूर्वक पढ़ते भी हैं। प्रस्तुत पुस्तक में प्रज्ञापुरुष मुनिश्री सुमन कुमार जी महाराज का जीवन परिचय दिया गया है। यह उन्ही की दीक्षा के ५२ वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में प्रकाशित की गयी है। इसमें श्वेताम्बर स्थानकवासी श्रमण परम्परा का परिचय, भगवान् महावीर की पट्ट परम्परा का विवरण; पंजाब श्रमण संघ की परम्परा, अ०भा० वर्धमान स्थानकवासी जैन संघ की पट्टपरम्परा और तत्पश्चात प्रज्ञामहर्षि श्री सुमन कुमार जी मा०सा० का जीवन परिचय एवं उनकी साहित्य साधना का सुन्दर विवरण है। आपके द्वारा स्थापित विभिन्न धार्मिक संस्थाओं की एक तालिका भी इसमें दी गयी है। पुस्तक के अन्त में मुनिश्री द्वारा विभिन्न विषयों पर दिये गये प्रवचनों का सार-संक्षेप दिया गया है। वस्तुतः यह पुस्तक मुनिश्री के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व के प्रत्येक पहलू को पाठकों के समक्ष उपस्थित रखने में समर्थ है। भगवान् महावीर की पट्ट परम्परा, श्वे स्थानकवासी परम्परा एवं पंजाब स्थानकवासी और वर्धमान स्थानकवासी परम्परा का संक्षिप्त इतिहास देकर इसे हर दृष्टि से पूर्ण बनाने का सफल प्रयास किया गया है जिसके लिये सम्पादक बधाई के पात्र हैं। यह पुस्तक श्रावकों और विद्वानों के लिये समान रूप से उपयोगी है। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रणयन करने वाले लेखक, सम्पादक और इसे अमूल्य पाठकों को प्रेषित करने वाले प्रकाशक सभी बधाई के पात्र हैं।

साभार प्राप्त

Mystic India Vol. 4. No. 3 May-June 2003 : Editor in chief - Suneel Babel, Editor - Ashok Sahajanand, Size - dimy, Registered office - D-65, Gulmohar Park, Gr. Floor, New Delhi; Price - Rs. 150/- One year (6 Issues)

चौबीस तीर्थंकर विधान - रचनाकार - श्री राजमल पवैया; प्रथम संस्करण-नवम्बर १९९९ ई०; प्रकाशक - अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन, ए - ४, बापूनगर, जयपुर ३०२०१५; आकार- डिमाई; पृष्ठ- २+१३५; मूल्य-१०/- रुपये मात्र।

श्री सीमंधर पंचकल्याणक विधान - रचनाकार - श्री राजमल पवैया, प्रथम संस्करण २००३; प्रकाशक - श्री भरत पवैया, संयोजक - तारादेवी पवैया ग्रन्थमाला, ४४, इब्राहीमपुरा, भोपाल-४६२००१ (म०प्र०) आकार - डिमाई, पृष्ठ ६४; मूल्य - १०/- रुपये।

श्री पंचपरमेष्ठी मंगल विधान - रचनाकार - श्री राजमल पवैया, प्रथम संस्करण २००३, प्रकाशक - पूर्वोक्त, आकार - डिमाई; पृष्ठ ५६; मूल्य - १०/- रुपये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बौद्ध संस्कृति - लेखक - प्रो० (डॉ०) अंगनेलाल; प्रथम संस्करण १९९८ ई०; प्रकाशक - श्रीमती (डॉ०) यमुना लाल, C/o प्रबुद्ध प्रकाशन, आर-२५, सिद्धार्थलेन, संजयपुरम्, लखनऊ - २२६०१६; आकार - डिमाई; पृष्ठ १०+१६+२८८+१० चित्र; मूल्य - ३००/- रुपये।

बिन्दु माधव धरहरा माधव राव - संकलक - डॉ० उपेन्द्र विनायक सहस्त्रबुद्धे, प्रथम संस्करण २००३; प्रकाशक- डॉ० रणजीत सिंह, माया महल, सी १९/१३५-२ ए, लल्लापुरा (थाना सिगरा के पास) वाराणसी-२२१००१, उत्तर प्रदेश, आकार- डिमाई, पृष्ठ ८+८८; मूल्य- १३०/- सजिल्द और ३०/- अजिल्द।

✸

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Statement About the Ownership & Other Particulars of the Journal

ŚRAMAṆA

1. Place of Publication	:	Pārśvanātha Vidyāpīṭha, I.T.I. Road, Karaundi, Varanasi-5
2. Periodicity of Publication	:	Quarterly.
3. Printer's Name, Nationaltiy and Address	:	Vardhaman Mudranalaya, Bhelupur, Varanasi-10, Indian.
4. Publisher's Name, Nationality and Address	:	Pārśvanātha Vidyāpīṭha, I.T.I. Road, Karaundi, Varanasi-5
5. Editor's Name, Nationality and Address	:	Dr. Sagarmal Jain, Dr. Shivprasad. As above
6. Name and Address of Individuals who own the Journal and Partners or share-holders holding more than one percent of the total capital.	:	Pārśvanātha Vidyāpīṭha, Guru Bazar, Amritsar. (Registered under Act XXI as 1860)

I, Dr. Sagarmal Jain hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 1.4.2003

Signature of the Publishers
S/d Dr. Sagarmal Jain

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

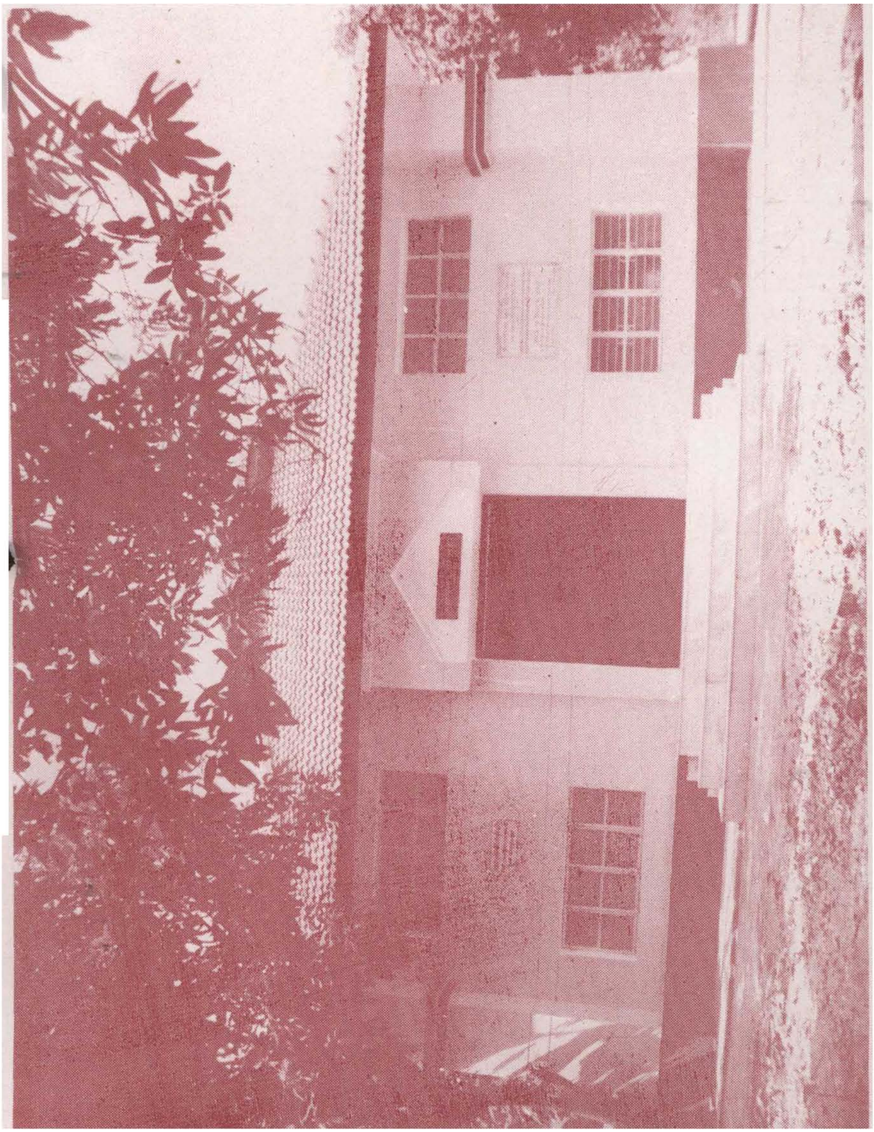

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

NO PLY, NO BOARD, NO WOOD.

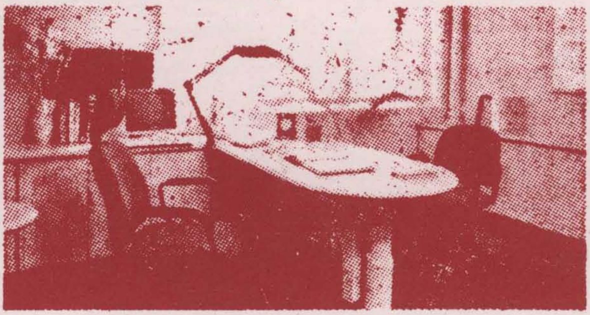

ONLY NUWUD.®

INTERNATIONALLY ACCLAIMED

Nuwud MDF is fast replacing ply, board and wood in offices, homes & industry. As ceilings,

DESIGN FLEXIBILITY

flooring, furniture, mouldings, panelling, doors, windows... an almost infinite variety of

VALUE FOR MONEY

woodwork. So, if you have woodwork in mind, just think NUWUD MDF.

Arms Communications

NUCHEM LIMITED

E-46/12, Okhla Industrial Area,
Phase II, New Delhi-110 020
Phones : 632737, 633234,
6827185, 6849679
Tlx: 031-75102 NUWD IN
Telefax: 91-11-6848748

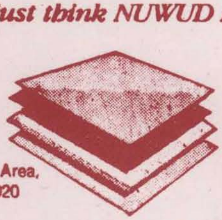

ISI

NUWUD MDF

The one wood for all your woodwork

MARKETING OFFICES: • **AHMEDABAD:** 440672, 469242 • **BANGALORE:** 2219219 • **BHOPAL:** 552760 • **BOMBAY:** 8734433, 4937522, 4952648 • **CALCUTTA:** 270549 • **CHANDIGARH:** 603771, 604463 • **DELHI:** 632737, 633234, 6827185, 6849679 • **HYDERABAD:** 226607 • **JAIPUR:** 312636 • **JALANDHAR:** 52610, 221087 • **KATHMANDU:** 225504, 224904 • **MADRAS:** 8257589, 8275121

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org